# प्रतिनिधि एकांकी

सम्पादन फूलचन्द्र पाण्डेय, एम० ए०

रामत्रसाद एण्ड सन्स, आगरा

[मूल्य तीन रुपये

शुरुवर' डा० रामकुमार वर्मा की क्षादर

- फूलचन्द्र पाण्डेय

### दो शब्द

यों तो एकांकी-संग्रहों की आज भरमार है। कुछ व्यक्तिगत संग्रहों के रूप में सामने ग्राये हैं भीर कुछ विभिन्न एकांकीकारों की सामग्री के संकलन के रूप में। व्यक्तिगत संग्रह एकांकीकार विदेश की प्रतिभा एवं विकास के प्रगति-चिह्न के रूप में देखे जाते हैं और संकलन प्रायः विद्यार्थियों के श्रव्ययन के लिये किये गये हैं। मैं स्पष्टतः इन्हीं प्राप्य संकलनों के विषय में दो शब्द कहना चाहता हूँ।

मुक्ते यह मान लेने में तनिक भी हिचक नहीं है कि संकलनों में पक्ष रिष्टकोण भ्रपनाया जाना चाहिए भीर हमारे संकलनकर्ता समाज ांकृचित भित्तियों से वाहर आने का वहुत कम प्रयास करते रहे हैं। इसा। प्रभाय उनके व्यक्तित्वं पर जो पड़ता है, वह तो पड़ता ही है, रिद्धान्ततः विद्यार्थी-वर्गं की जागृति प्रवृत्ति की वड़ा धक्का लगता है। परिणामस्वरूप उनकी भीतरी शाकांक्षा के कुण्ठित हो जाने का सर्वदा हर बना रहता है। साथ ही, नये एकांकीकारों से वे परिचित्त नहीं हो पाते । एकांकी की साहित्यिक विधा, नई विधा होने के साथ ही, अत्यन्त प्रगतिशील है, समाज के साथ चल सकने की पूर्ण क्षमता है, सम-सागयिकतां को अपने आप में समेट लेने की शक्ति है। ऐसी परिस्थित में यह ग्रनिवार्य है कि पारुपफ़म के अनुकूल तैयार किये गये संकलनों में विद्यार्थी-यर्ग की धाकांक्षागों के उद्त्रीयन तथा सामूहिक विकास की जेतना राजग श्रीर राजीव हो श्रीर इसके लिए श्रावस्थक होगा संध्यतकर्ता के प्रान्तरिक प्रहं का सन्तुलन, नवनिर्मित साहित्य का मध्ययन तथा उसके प्रति उदार दृष्टिकोण । विना इनके, किसी भी प्रयं में, संकलनकर्ता प्रपना पूर्ण उत्तरदायित्व नहीं निभा सकता असरने की है पर सही है; कद है पर सत्य है। ऐसा लिएं , पर्याप्त कारण है कि जितने भी संकलन देखने को मिते, उनमें प्रीं जत एकांकी-कारों की एक-दो रचनाएँ ही देखने को मिलीं, इने-गिनें ,कांकीकारों के साय मुख ऐसे एकांकीकारों के नाम मिले, जिनका एक की संसार में कोई

भी स्थान नहीं हो सकता। हो सकता है कि उन एकांकीकारों में एकाध एकांकी अच्छे लिखे हों, जिन्हें मान्यता मिलनी चाहिए पर वया उन साहित्यिकों के प्रति इसे हम अन्याय न कहेंगे जिनके सैकड़ों एकांकी सामने हैं और सभी में कुछ न कुछ समाज के लिए सन्देश हैं। इसलिए मेरा विचार है कि ऐसे संकलनों में विद्यार्थी-वर्ग तथा एकांकी-साहित्य के विकास-परम्परा पर ग्रधिक घ्यान देना चाहिए, न कि व्यक्तिगत परिचयों तथा सम्बन्धों पर।

प्रस्तुत एकांकी-संग्रह में इस दृष्टिकोण को पूर्णंतः अपनाया गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लब्धप्रतिष्ठ एकांकीकारों के उनके बहु-प्रचलित एकांकियों से भिन्न एकांकी लिए गय हैं तथा कुछ नये मान्य एकांकीकारों को भी संकलन में स्थान दिया गया है। साथ ही यह भी ध्यान दिया गया है कि राजस्थान कहीं अछूता न रह जाय श्रीर इस क्षेत्र की प्रगतिशील प्रतिभाग्नों को स्थान मिले। डा० रांगेय राघव इस क्षेत्र के प्रतिनिधि एकांकीकार के रूप में संकलन में लिए गए हैं।

अन्त में, संकलन में संग्रहीत कृतियों के लेखकों के प्रति आभार प्रकट करना में ग्रपना कर्तव्य ही नहीं वरन् दायित्व मानता हूँ। साथ ही, अपने सहयोगियों के प्रति में हृदय से आभारी हूँ जिनका सहयोग इस संकलन में मिला है। श्री वृजनारायण अग्रवाल, एम० कॉम० का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनके रात-दिन के उलाहनों के विना संकलन का कार्य पूरा होना एक प्रकार से असम्भव हो गया था।

आशा ही नहीं वरन विश्वास भी है कि प्रस्तुत संकलन में अपने द्वारा निर्धारित दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में सफल रहा हूँ। पाठक-भिके सामने संकलन है; इसका निर्णय उन्हों के ऊपर है।

जयपुर २ अप्रेल, १६५६

फुलचन्द्र पाण्डेय

इससे कम ऐतिहासिक कथायरतु के एकांकी मिलते हैं जिसमें एकांकीकार का उद्देश्य होता है कि एकांकीकार प्राचीन संस्कृति का सन्देश प्रस्तुत करे। इसका कारण है कि नाटककार के पास न तो श्रविक समय है श्रीर न घटना का अधिक विस्तार हो । इसी पक्ष की पूर्ति के लिए नाटककार 'को त्याग श्रीर समन्वय की भावना का श्राश्रय लेना होता है। वह जीवन · के एक क्षण में ही "पूर्णता" भर देना चाहता है । प्राप्य एकांकी नाटकों में डा॰ रामकुमार वर्मा के एकांकी इस हिन्द से सफल एकांकी हैं। सेट गोविन्ददास के एकांकी नाटकों में घटना की प्रमुखता के कारण "चयन वृत्ति" की कमी परिलक्षित होती है। नवोदित एकांकीकार ग्रर्जुन चौर्ये करचप के एकांकी खींचा-तानी करते है, मनोविज्ञान-गत संघपं की पूर्णता तक नहीं पहुँच पाते । "प्रक्क", गोविन्दवल्लभ पन्त ग्नादि के एकांकी नाटकों में गतिशीलता कुछ मन्द रहती है, वह प्रलय की ज्वाला श्रपने में समेटना भला नहीं मानती। श्री उदयक्षंकर भट्ट, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर आदि के एकांकी विषय का तब तक साथ देते है जब तक कि उन्हें रेडियो टेक-नीक से दूर न जाना पड़े । इन नाटकों के पीछे व्यक्तिगत समस्याएँ स्पष्ट मालूम हो जाती हैं। श्री भट्ट जी ने ग्रपने एकांकियों में समाज की जुली श्रालोचना भी प्रस्तृत की है। टा॰ लाल विषय की श्रपेक्षा मनोविज्ञान तया परिस्थितियों के प्रभावों पर अधिक वल देते जान पड़ते हैं।

एकांकी कला का प्रमुख धा<u>षार नंकत्त-प्रय</u>-है। समय, स्थान ग्रीर कार्य की एकता में ही एकांकी की सफलता है। टा॰ रामकुमार वर्मा के प्रमुखौर सफल एकांकी के लिए तीनों संकलनों का होना श्रनिवार्य है। डा॰ साहव के चाकिनता, सप्तिकरण, रूप-रंग श्रादि एकांकी नाटकों में उनकी यह विचारपारा स्पष्ट हो गयी है। सेठ गीविन्ददास के एकांकी में तीनों संकलनों का प्रयोग नहीं हुमा है। परिणामस्वरूप कथानक का समुचित विकास न होकर उलभ गया है। इनके नाटकों में गही कार्य की प्रमुचित काम नहीं करती है ग्रीर कहीं स्थान की। परिणाम यह हुन्ना है कि नाटकरार को कार्य-भार से दक्कर १०-११ हस्यों का विधान करना पड़ गया है। एकांकोकार इन्हीं संकलनों का नम्बल

नेते हुए धनीत-यत पटनायां चा मनेत मात प्रमान करता है। वस्तुतः एतांनी की वंत्रा उस हिम-सण्ड केंगी होनी घाहिए जिसका सीन-भीषाई भाग एन में हिसा होता है और दिसके जार दिशाई देने बाते अनुमीय द्वारा ही सम्पूर्ण कथानक जा सनुमान गामा जा मके। नायिक मी सफलता उस हिम-स्था ने एकाने में नहीं है बरुद उमकी सफलता है अपने को बचा तेने में। उसी प्रवार एकांकी में धरीत-सत जीवन मा धर्मण्ड में धर्मता ही नाटक कार भी भेष्टता एवं महानता है। एकांकी कार में धर्मता होनी चाहिए कि नह एकांकी में धर्म हुए पाने का सम्पूर्ण जीवन संभित्तों के साथ्यम से ब्यान कर सने। उसी प्रमृति विभिन्न से एकांकीकार एवा प्रारम्भ होने ने पहने बातावरम्ह एवं परिस्तित कारण्ड संभेत कर देता है ताकि पानों वी प्रवृत्ति से पाटक सा दर्शन परिचित को स्थान हों जायें।

चरित्र-चित्रण के लिए एकाकीयार मनोविद्यान का सहारा नेसा है। परिस्थित एवं संवादों के माध्यम ने बह किसी पात्र-विशेष का मनोविशान प्रस्तुत फरता है। स्वयत-एयन तथा सम्ये संवादों के कारण चरित्र-चित्रण के निए प्रपेदाावृत अधिक नामग्री मिन जाती है। चरित्र सर्वेदा मानव-भूमि पर ही खड़ा हो हर बोलता है। पत्थानक की भान्तरिक गम्भीरता चाहे किमी चरित्र को गम्भीर वर्यों न बनादे, पर वह मानव से प्रति-मानव में परिणत नहीं हो नकता । एकांकीकार सर्वदा मानव के बीच ही रहना नाहता है। भादमं धीर यथार्थ में एकांगीकार सवार्थ का पक्ष ग्रहण करता है। पात्रों की श्रमिव्यक्ति तथा उनकी मृष्टि एकांकी-कार अपने हायों में रराता है, अपने से अथवा समाज से ऊपर नहीं। चरित्र में ज्यों-ज्यों गति बढ़ती जाती है, एकांकीकार को भ्रवसर मिलता है कि वह पाप की भ्रान्तरिक उनझनों को भली-भांति मुलझा सके। कोई भी, एकांकीकार किसी समस्या को केवल समस्या बनाकर चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत नहीं करना चाहता वरन् संकेत प्रणानी से वह उन समस्याधीं का समाधान भी प्रस्तुत करता है। पात्र उस समय एकांकीकार के हाथ में होते हैं। वह जिस प्रवार का समाधान प्रस्तुत करना चाहे, कर सकता हैं । उस समय पात्र उसक हायों में कठपुतली के समान नाचते रहते हैं ।

ग्रिभिनय तथा रंगमंच की दृष्टि से ये एकांकी नाटक अधिक सफल माने जाते हैं। हिन्दी का ग्रपना रंगमंच स्थिर न होने से पूर्ण नाटकों के श्रिभिनय का प्रश्न ही श्रसंयत लगता है। एकांकी के लिए किसी विशेष प्रकार के रंगमंच की श्रावश्यकता नहीं होती। उसके लिए एक कमरा, याग श्रादि ही पूरा रंगमंच होता है।

जिन विशेषताश्रों का संकेत ऊपर किया गया है, उन पर प्रायः सभी नाटकजार, श्रालोचक तथा पाठक एकमत हैं। इन एकांकी नाटकों की सफलता उनके रंगमंच के लिए उपयुक्त होने में ही है। इसका कारण यह है कि न तो दृश्य इतने श्रीयक होते हैं कि कथावस्तु शिविल पड़ जाय श्रीर न कथावस्तु का विकास ही जटिल हो पाता है। एकांकी नाटक श्रीयक लोकप्रिय हुए हैं श्रीर होते जा रहे हैं क्योंकि इनके द्वारा रंगमंचीय नाटकों श्रीर साहित्यक नाटकों के बीच जो खाई वन रही थीं, उसे पाट देने का प्रयत्न किया गया है। रंगमंचीय श्रावद्यकताओं की पूर्ति से व्यावसायिकों ने इसका स्वागत किया है श्रीर साथ ही साहित्यकता के श्राधार पर साहित्य-क्षेत्र में इस विधा विशेष की यथोचित स्थान मिला है।

एकांकी की सफलता के कारणों में, उसमें समाज श्रीर जीवन की समस्याश्रों तथा मानिएक इन्हों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाना भी है क्योंकि पाठक कथावस्तु के ध्रपने समानान्तर व्यक्तित्व की कथा को ध्रपनी ही कहानी मान बैठता है। एकांकीकार ने मनोविदलेपण श्रीर मनोविज्ञान का समावेश कर, व्यक्तित्व के तट तक जाने का प्रयत्न किया है। पाप के संकल्प-विकल्प, इन्ह, चेतन श्रीर अचेतन मस्तिष्य की प्रतिक्रियाशों को स्वरूप देने में ही एकांकीकार की सफलता है। मनोविज्ञान को ध्रपना माध्यम स्वीकार करते हुए एकांकी लेखक जीवन के श्रीयक निकट आ गये हैं। इनी कारण आयुनिक एकांकियों में जीवन की ध्राया, निरासा, इन्द्र, संघर्ष, मनोवेग, मुन्व-दुःस, चिन्ता श्रादि का श्रत्यन्त सफल चित्रण हम्रा है।

पहले बताया गया है कि हिन्दी एकांकी नाटकों का आरम्भ प्रमाद के 'एक पूंट' से माना जाता है, बद्यपि कुछ धालोचक इसे 'बैदिकी हिना हिंसा न भवति" से जोड़ने का अन्यमा प्रयास करते हैं। यह नहीं है कि प्रसाद जी का "एक पूँट" नाटय-परस्परा से पूर्ण सुक्त है किर भी नवीनता का संकेत धयस्य निगता है। जिसके श्रापार पर ही उसे सबसे पहला हिन्दी एकांकी मान लेते हैं। द्या० रामकुमार वर्मा ने प्रसाद जी द्वारा दिये गये स्वरूप को परिष्कृत फरने का प्रवस्त किया है। वर्मा जी की प्रतिभा निस्मंदेह बहुमुत्री कही जा नकती है। पृथ्वीराज की भ्रानि, रेशमी टाई, चामित्रा, विभृति सप्तिकरण, इन्द्र-धनुष, रूपरंग, रजत-रिस्म, ऋतुराज, रिमिन्सम, ध्रुवतारिका छादि एकाकी संब्रहों में वर्माजी नी एकांकी कला निगरी हुई है। इन एकाकी नाटकों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी धाधार-भूमि प्रायः सामाजिक समस्याएँ है, उच्च वर्गे या उच्च मध्यवर्गीय समाज की विषमताश्रों तया बाह्य श्रावरण ने घबराये हुए व्यक्ति ही को ऐसे नाटकों से सर्वदा नायक बनाकर बर्माजी ने समाज का सच्चा चित्र देने का सफल प्रयास किया है। प्रेमचन्द के गोदान में प्राये हुए दा॰ खन्ना के चरित्र की भौति ही शिक्षित वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों द्वारा रंगीन जीवन प्रस्तुत करते हुए टा० वर्मा ने समाज की तीव भत्नंना की है, साध-ही समाज को उच्च विक्षा के प्रधं के ग्रपच हो जाने का निर्णय दिया है। समस्याग्रीं को प्रस्तुत करते हुए, एक विशेष प्रकार की माननिक स्थिति पैदा करते हुए डा॰ वर्मा संघपों के माध्यम से ग्रादशों की ग्रवतारणा करते हैं, जो किसी भी प्रकार ऊपर से लादे हुए प्रवचन जैसे नहीं लगते और ऐसा प्रतीत होता है जैंसे पाठक इस निर्णय को पहले से ही जानता रहा हो। ग्रठारह जुलाई की बाम और परीक्षा इसी प्रकार के एकांकी है जिनमें ब्रादर्गीन्मुल ययार्य को स्वरूप मिला है। इनके श्रतिरिक्त डा॰ वर्मा ने उन सभी नामाजिक समस्याम्रो को उठाने का प्रयत्न किया है जो भ्राज के समाज में पके हुए फोड़े की भौति चल रही हैं। विवाह ग्रीर प्रेम की समस्याएँ प्रायः विश्वद्धानित समाज की दमी प्रकार की नमस्याएँ कही जा सकती है । नहीं का रहस्य, छोटी सी बात, पुरस्कार, श्रांखों का प्राकाश श्रादि एकाकी प्रेम और विवाह से सम्बन्धित एकाकी है। जहाँ तक समाज की विभीषिका में प्रेम ग्रीर विवाह की आवतारणा टा॰ वर्मा के नाटकों में की गयी है वहीं नागरिक की स्वतन्त्रता, मध्यवर्गीय भूठी शान, पारचात्य सम्यता की देन और प्रभाव तथा व्यावहारिकता का प्रतिपादन भी डा॰ साहव ने किया है। डा॰ वर्गा के शेप एकांकी राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक एकांकी कहे जा सकते हैं। विषयों के श्रनुसार ही टा॰ साहव ने भाषा का चुनाव भी किया है। सबसे बड़ी विशेषता इन नाटकों की यह है कि इनमें इतिहास, राजनीति तथा मनोविज्ञान के साथ-साथ सामाजिक समस्याशों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। हास्य-विनोद के प्रसंग भी श्राये हैं, पर उनका ध्येय सबदा समाज के स्वस्प का दर्शन करना मात्र ही रहा है।

सेठ गोविन्ददास जी के एकांकी नाटकों में चयनबृत्ति की कमी की घोर हमने पहले संकेत किया है। इनके जितने भी एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके है उनमें सप्त-रिम, चतुष्पद, पंचभूत, स्पर्धा, एकादशी श्रादि एकांकी संग्रह प्रमुख हैं। जहाँ तक सेठजी के नाटकों की कथावस्त् या सम्बन्ध है उन्होंने समाज श्रीर इतिहास दोनों को श्रपना क्षेत्र चुना है। भूत श्रीर वर्तमान के बीच में एकांकीकार यथार्य चित्रण तो श्रवस्य कर सकता है पर उसमें भविष्य के लिए कोई सन्देश देने की शक्ति नहीं श्रा सकती। सेठजी भी श्रपने को इससे बचा नहीं सके हैं। हिन्दी एकांकी क्षेत्र में सेठ गोविन्ददास ने अनेक प्रयोग किये है श्रीर सबसे श्रधिक एकांकी लिये हैं। यह दूसरी वात है कि ये प्रयोग सफल हैं या श्रसपाल नयोंकि हिन्दी नाटकों के लिए भारतीय श्रीर पारचात्य दीनों ही नाटकीय परम्पराएँ नई ही रही हैं। यदि हम पिछने इतिहास को देखें तो हिन्दी का साहित्यिक स्वरूप प्रतिपादन करते ही भारतेन्द्र के सामने यह समस्या प्रायी कि हिन्दी रंगमंत्र का कोई स्वरूप नहीं है। यदि कुछ निर्देश या भी तो वह केवल पुस्तकीय प्रध्ययन मात्र की देन था। हिन्दी में रंगमंत्र की आवस्यकता पर हम आगे विवेचन करेंगे।

सेठ गीविन्दवास के प्रयोगों ने इतना भवस्य हुमा है कि भाने वाले नैसकों ने बड़ी तैयारी से प्रयोग करने का निरुषय किया है। उन्हें निर्भीक प्रवृत्ति भीर उत्साह देने का कार्य इन एकांकियों ने किया है। ग्रभी भी एकांकी क्षेत्र में प्रयोग हो रहे हैं, जो ग्रान वाले भविष्य के उउज्जल होने का संकेत करते हैं।

'समाज के बीच में खड़े होकर उसकी विषमताश्रीं को यथायं की भूमि पर रखने का प्रयास उपेन्द्रनाय 'श्रदक' ने किया है। यद्यपि, प्रायः इनके नाटकों का क्षेत्र पंजाब ही रहा है पर जिन समस्याग्रों को जठाने का, जिन्हें परखने का और जिन्हें सुलझाने का प्रयत्न श्रदक के नाटक-कार ने किया है, वे समस्याएँ किसी वर्ग विशेष में बांधी नहीं जा सकतीं। पंजाव के मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्धित कथावस्तु को समाज के दर्पए के रूप में दिया गया है। सच तो यह है कि श्रदक ने जिस समाज में पहली बार सांस ली है, वही उनकी नेखनी में समा गया है। एकांकीकार यदि म्रादर्जों के लिए सप्ट सत्य मीर ययार्थ की जपेक्सा करदे, तो पाठक के प्रति वहुत वड़ा प्रन्याय होता है पर ग्रहक जी ने ययार्थ को ही अपना केन्द्र बनाया है, यथार्थ के आगे आदशों की उपेक्षा कभी-कभी उन्हें स्वीकार है। कथानक के चुनाव में भी उनकी यह विशेषता रही है कि जीवन को ऐसा चुनकर प्रस्तुत करें कि जिसकी ओर किसी भी सहृदय पाठक का हृदय आकर्षित हो जाय। कथावस्तु को समभ लेने के बाद पाठक यह कह बैठे कि यह कथानक तो उसका पूर्व-परिचित कथानक है, कभी-कभी तो उसके जीवन की एक घटना है। नाटककार की सफलता इसी में है कि वह पाठक को अपने साध मनचाही परिस्थिति में ला दे। पाठक या दर्शक के हृदय पर चीट करते हुए नाटककार श्रश्क ने उसे सोचने के लिए छोड़ दिया है।

श्रश्क की कयावस्तु एक घेरे में घिर गयी है। मध्य वर्ग श्रथवा निम्न वर्ग का समाज ही उनका केन्द्र वन गया है। सम्भवतः पाइचात्य प्रमाव में पंताव के श्रधिक श्रा जाने तथा दैनिक समस्याश्रों को नित्य-प्रति उलम्के हुए देखकर ही समाज की विभीषिका ने इन्हें श्रपनी श्रोरं जींचा है। श्रेम श्रीर विवाह की समस्या इनके एकांकियों में श्रधिक निजरी है। वहिनें, श्रलग-श्रलग रास्ते, स्वर्ग की जलक, केंद्र श्रादि एकांकी इन्हों समस्याश्रों का विश्लेषण हैं। जहाँ नाटककार श्रश्क पर पारिवारिक जीवन की दैनिक विषमताश्रों ने चोट की है वहीं श्राघुनिक समाज के श्राधिक पिशाच ने संघपों के लिए भी उन्हें तैयार किया है। जहाँ उनके कथानक पारिवारिक जीवन-क्षेत्र से वाहर निकलते हैं, वहीं उनको आर्थिक वैपम्य चुनौती देता है। हमारे श्राज के समाज का नग्न हाँचा उन्हें पुकारता है जिनके सफल चित्र "देवताश्रों की छाषा में", "श्रिषकार का रक्क", "पक्का गाना" श्रादि से स्पष्ट हुए हैं। समसामिक विषमताथों से हार खाना श्रव्क के श्रान्तरिक नाटककार ने नहीं सीखा है। वह यथार्थ के सामने श्रात्म-समर्पण कर देना नहीं चाहता। उसे समाज के बीच एक श्रादशं ज्योति मालूम होती है जो वह तूफान से पहिले "घोसू" के शब्दों में कह बैठता है।

"एक तूफान आ रहा है जिसमें ये सब गुण्डे, ये धर्म और जाति-पौति के दर्प, गरीबों का तह पीने वाले पूँजीपति, ये भोले-भाले लोगों को लड़वाफर श्रपना उल्लू सीधा करने वाले नेता, सब मिट जायेंगे। नई.दुनिया बसेगी, जिसमें गरीबों का, मजदूरों का राज होगा, जहाँ हिन्दू-मुसलमान न होंगे, काले-गोरे न होंगे, सब इन्सान भाई-भाई होंगे।" सचमुच इसमें एक नये समाज की कल्पना है। साथ ही सम-सामियक समाज की भत्संना भी है।

प्रश्न की नाट्य-कला का केन्द्र है—व्यंग, जिस पर पाश्चात्य नाटककारों का प्रभाव माना जा सकता है। इनका नाटककार यह समझ बैठा है कि लोगों की एक सनक होती है घोर उसी से प्रेरित होते हुए लोग बिना सोचे-समभे कुछ का कुछ कर बैठते हैं। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि किसी भी साहित्यक का इस प्रकार की घारणा बना लेना बहुत स्वस्य दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता। यदि किसी साहित्य-कार की जब कोई विदोप धारणा बन जाती है तब वह उसी प्रकार की परिस्पित का निर्माण करता है जिसमें उसकी मनचाही मूर्ति रक्खी जा सके। स्पष्ट है कि वह एकांकी का वह रूप होगा, जो साहित्यकार के व्यक्तित्व के समानान्तर होगा। घरक का नाटकवार इस सनक से पराजित कहा जा सकता है।

व्यंग के लिए परिस्थिति बनाने में ही नाटककार की कुशलता का परिचय मिलता है। पात्रों के माध्यम से समाज और व्यक्तित्व की झलक मात्र देने में व्यंग की सीमा नहीं मानी जा सकती। उसके लिए कहीं-न-कहीं स्पष्ट संकेत होना चाहिए। नाटककार श्रदक ने पादचात्य नाटककारों से इस गुण-विदोष को श्रपनाने का श्रच्छा प्रयास किया है। प्रायः समाज की विभीषिका प्रस्तुत करने में उन्हें काफी सफलता भी मिली है।

श्री उदयशंकर जी भट्ट के एकांकी नाटकों का क्षेत्र समाज श्रीर इतिहास रहा है। इतिहास के क्षेत्र में भी भट्ट जी पौराणिक-युग तक पहुँच गये हैं। सौदामिनी जैसे एकांकी बौद्ध-कालीन संस्कृति के परीक्षण की देन है। इतिहास श्रीर सस्कृति के श्रनुकूल ही भट्ट जी ने श्रपने पात्रों को परिस्थितियों का दास न बनाते हुए व्यक्तिगत श्रभावों श्रीर व्यक्तित्व से परिचालित घोषित करने का श्रयास किया है। भाषा भी पात्रों के व्यक्तित्व के श्रनुकूल ही रक्की गयी है।

सामाजिक एकांकियों में भट्ट जी समाज की प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति से परिचालित हुए हैं।

#### ध्वनि नाटक

एकांकी के प्रसार में व्वित-विस्तारक यन्त्र (रेडियो) का विशेष हाथ रहा है। रेडियो की इस प्रगित ने ग्रनेक एकांकी कारों को जन्म दिया है— इसमें तिनक भी सन्देह नहीं है। ऊपर एकांकी के उस रूप का ही विवेचन किया गया है जो रंगमंच ग्रथवा ग्रभिनय के लिए ही है। रेडियो में एकांकी का एक विशेष रूप प्रयुक्त होता है। एकांकी (मूल ग्रथ में) तथा व्वित-नाटकों में वड़ा ग्रन्तर होता है। रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने वाले एकांकी का वातावरए। रंगमंच की सजावट, वेश-भूषा ग्रादि पर ग्रावारित होता है परन्तु रेडियो पर प्रसारित नाटक के लिए केवल व्वित का ग्रावार होता है। रेडियो में समस्त इन्द्रियाँ केन्द्रीभूत होकर श्रवणेन्द्रिय के पास रहती हैं।

ध्विन-नाटकों में घटनाश्रों की प्रमुखता पर वल दिया जाता है जिसके फलस्वरूप पात्रों के कार्य-कलाप में ग्रारोह-ग्रवरोह उपस्थित किया जा सकता है। साथ-ही-साथ पात्रों श्रथवा घटनाश्रों में जितना ग्रिधक

विरोध उपस्थित किया जायगा जतना ही प्रधिक नाटक के मनोरंजन तत्व का विस्तार होगा। घटनाद्यों के जुनाव तथा संशोधन में किसी एकांकीकार को प्रधिक ध्यान देना चाहिए वयोंकि प्रसम्भावित तथा प्रप्रत्याशित घटनाग्रों के स्वाभाविक संघटन से कौतूहल की जुशल ग्रिभ्यिक्त की जा सकती है। घटना प्रथवा पात्र ग्रथवा दोनों को ही ग्रत्यन्ताधिक गतिशील होना चाहिए। एकांकीकार को इस गतिशीलता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। घटनाग्रों को गति देने में ही ध्वान ताटककार की कुशलता है। उसे चाहिए कि छोटे से छोटे कार्यों की स्वाभाविकता नष्ट न होने दे। यही स्वाभाविकता ध्वान के साथ मिल कर रेडियो-रूपक सुनने वालों में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। कथा- यस्तु के चयन में नाटककार को इस पर बड़ी सतर्कता से ध्यान देना चाहिए कि ध्वान-रूपक की कथावस्तु ऐतिहासिक होने की प्रपेक्षा सामाजिक या पारिवारिक हो, तो उसे ग्रधिक सफलता मिल सकेगी।

ध्वित-नाटक में रेडियो पर समस्त ग्रमिनय को कण्डध्वित द्वारा मुख़रित करना होता है। श्रतः उपयुक्त श्रभिनेताशों को विदेषता ही ध्वित-नाटक की सफलता में सहायक हो सकेगी। श्रवस्था, श्रात्मा तथा पात्र का समस्त व्यक्तित्व उसी श्रभिनेता को कण्डध्वित पर श्राधारित होता है। वातावरण प्रस्तुत करने के लिए संगीत का विधान करना गड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी ध्वित-नाटक में केवल फण्डध्यित का ही सहारा रहता है जिसके माध्यम से एकांकीकार को यातावरण श्रीर समान मनोबैज्ञानिक स्तर बनाना होता है। श्रन्य सभी उपादान ध्वित-रुपक के लिए ध्ययं श्रीर श्रनावश्यक है।

रेटियो के कलाकारों ने श्रोताश्चों के मनोरंजन को श्राधार बनाते हुए ध्यनि-नाटक को नाटक, रूपक, संगीत-रूपक, प्रहसन, संवाद, प्रकरी, धन्तर्देग्य, श्रन्तध्वीन, प्रस्थापक तथा इतिवृत्त वर्गों में विभाजित कर रक्ता है। इन रूपों का संक्षिप्त परिचय देना यहाँ ग्रनिवाय दिखाई देता है । ध्यनि-नाटक की प्रगति के नवीनतम पद-चिह्न हैं।

माटक-पार्वी से कथावस्तु का घारम्भ कराते हुए घनेक परिस्थितियों को पार कर, कौतूहनता की भूमि पर जब किमी ध्वनि-नाटक की चरम- सीमा की परिणित होती है, तब उसे नाटक कहते हैं। नाटककार का घ्येय यहाँ चरमसीमा तक पहुँच कर किसी सत्य श्रथवा श्रसत्य का प्रति-पादन करना होता है। वातावरण प्रस्तुत करने के लिए इस प्रकार किसी घ्विन विशेष वाले पात्र की श्रावश्यकता नहीं होती। संगीत (वाद्य) का माध्यम ऐसे स्थलों पर लिया जाता है। नाटककार इसमें किसी भी तरह श्रपने श्रापको दर्शक की भौति नहीं रख सकता। जिस विशेष समस्या का उद्घाटन करना उसका ध्येय होता है, उस समस्या की सत्यता पर वल देते हुए उसे श्रत्यविक न्याय-संगत ढंग से स्पष्ट भी करना पड़ता है।

स्पक (रेडियो फीचर्स)—ध्विन-नाटकों में रूपक का दूसरा स्थान म्राता है। इसमें एक ग्रन्य पात्र, प्रवक्ता, (नरेटर) होता है जो वाता-वरण, कथावस्तु तथा सूत्र का परिचय श्रोता को कराता है। प्रमुखतः घटनाओं तथा परिस्थितियों को स्पष्ट करने के लिए श्रीमनय ग्रथवा वार्तालाप का ग्राधार लिया जाता है। नाटक में पात्रों के माध्यम से ही कथावस्तु का श्रारम्भ होता है परन्तु रूपक में पात्रों का परिचय मात्र मिलता है। इसमें प्रवक्ता ही प्रमुख ध्विन होता है।

संगीत-रूपक — जिस घ्विन-नाटक में वार्तालाप का माध्यम गीत हुग्रा करता है तथा वातावरण का विवेचन ग्रिभनय, नृत्य तथा संगीत से किया जाता है, उसे संगीत-रूपक कहते हैं। इसमें प्रवक्ता तथा पात्र दोनों ही वर्णनात्मक ढंग से संगीतों का प्रयोग करते हैं। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि किसी कथन का ग्रिभनय ग्रीर संगीत के माध्यम से विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। सम्पूर्ण ध्विन-रूपक का समन्वित प्रभाव जो श्रोता के मस्तिष्क पर पड़ता है, वह रूपक का प्रभाव नहीं होता है, वरच वह रूपक के प्रभाव की ग्रोक्षा संगीत का प्रभाव ग्रियक होता है।

प्रहसन—व्यंग, विनोद, हास्य श्रयवा परिहास प्रस्तुत करने के लिए जब जीवन की हलकी श्रालोचना प्रस्तुत की जाती है तब वह व्विन-नाटक प्रहसन कहा जाता है। प्रहसन व्विन-नाटक की विशेपता यह होती है कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के श्रनुकूल इसका श्रन्त सर्वदा सुखमय होता है। संवाद--जब किसी घटना की श्रिभिव्यक्ति दो या दो से श्रविक पात्रों के वार्तालाप द्वारा प्रस्तुत की जाती है तब संवाद घ्वनि नाटक होता है।

श्चन्तर्ह रय--भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याश्रों को श्राघार मानते हुए श्चलग-श्रलग श्रमिनय दृश्यों को प्रस्तुत करना श्चन्तर्ह रय कहलाता है इसमें एक विशेष व्यवस्थित गोष्ठी की श्रावश्यकता होती है। जब एक समस्या का श्रमिनय दृश्य समाप्त हो जाता है तब गोष्ठी के सभी सदस्यों हारा व्यंग, हास्य तथा विनोद का विधान नाटककार को करना चाहिए।

प्रकरी—जहाँ किसी कौतूहलजनक घटना को प्रस्तुत करने के लिए मनोरंजक ग्रभिनय का ग्राघार लिया जाता है, तब वह प्रकरी घ्वनि नाटक कहा जाता है।

श्रन्तध्यं नि—जब किसी विशेष घटना को भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की कण्ठ-ध्विन से विस्तार दिया जाता है तब श्रन्तध्वं नि नामक ध्विन नाटक होता है। यहाँ वर्णनात्मक प्रधान होती है।

प्रस्यापक—िसी व्यवस्थित कथावस्तु को प्रस्तुत करते समय वीच-वीच में उदाहरणों की श्रावश्यकता पड़ जाती है श्रीर ऐसे स्थलों पर निम्न व्यक्तियों द्वारा संगीत का विधान किया जाता है। इसे प्रस्थापक कहते हैं।

इतिवृत्त-किसी सत्य के उद्घाटन को मनोरंजक रखना तथा स्मरण में भारम-कथा का श्रेय देना इतिवृत्त का कलापक्ष है श्रीर इसका ही प्रभिनयात्मक चित्रण इतिवृत्त कहलाता है।

जिन साहित्यकारों ने प्रपना साहित्यक जीवन नाटककार के रूप में प्रारम्भ किया था, उन सभी को किसी न किसी समस्या के कारण रेडियो के लिए लिसना श्रनिवायं हो गया है। बाज का नाटककार पाटक के लिए नहीं, दर्शक के लिए नहीं, वरन् मशीन श्रीर् श्रोतायों के लिए निन्द रहा है, प्रारम्भिक नाटक के शास्त्रीय स्वरूप से झाज के ध्वनि-नाटक के रूप में जमीन-श्रासमान का श्रन्तर श्रा गया है। या० रामगुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, श्रमृतलाल नागर, विरुष्ण श्रभाकर, सेठ गोनिन्ददास, टा० नक्ष्मीनारायण नाल, सत्येन्द्र घरत्, सर्वेश्वर दयाल सबसेना, देवराज दिनेश, हरिकृष्णा प्रेमी, म्रोंकारनाथ 'दिनकर' आदि सभी ने इस घीर प्रयास किया है पर सफलता कितनों को मिली है, इसके विषय में प्रश्नवाचक चिह्न के साय उत्तर प्रस्तुत किया जा रहा है। टा॰ वर्मा तथा उदयर्गकर मट्ट के एकांकी प्रायः रंगमंच के धनुकूल होते है। हम उन्हें गींचा-तानी के साय रेटियो पर सुनते हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक पूर्णतः समस्यात्मक है और रेष्टियों के लिए अधिक उपयुक्त नहीं प्रमाणित हो पाये हैं। टा॰ लक्ष्मीनारायण लाल के व्यनि-नाटक श्रवश्यमेव रेटियो शिल्पकला तथा उपयुक्त विषय प्रस्तुत करते हैं। इस क्षेत्र में नाटक साहित्य की श्रपेक्षा श्रीवक हास्यरस के व्विन-नाटक सामने श्रापे हैं। कम से कम रेडियो से, मशीन के युग मे, हिन्दी नाटक साहित्य की यह कमी पूरी हुई है। यद्यपि इस क्षेत्र में मौलिक लेखकों की कमी श्रव भी म्रसरती है तथा विषय प्रतिपादन प्रणाली म्रपेशाकृत हास्यास्पद प्रतीत होती हैं फिर भी इस क्षेत्र के सफल लेखकों में श्री गंगाघर शुक्ल, चिरंजीत, श्री राजाराम शास्त्री के नाम विदोपतः उल्लेखनीय है। गंगाधर शुक्ल का "मुबह होती है, जाम होती है" समाज श्रीर पारिवारिक जीवन पर एक सफल व्यंग कहा जा नकता है। यद्यपि पारिचारिक दैनिक जीवन की लेकर शुक्त जी ने हमारे जीवन की समस्याग्रों का उद्घाटन किया है पर इतना कहा जा सकता है कि आज कलाकार का उत्तरदायित्व प्रश्न श्रीर समस्या को रखकर दूर भागने की बात नहीं रह गयी है, फोड़े की चीड़-फाड़ करने के साथ ही उसकी मरहम-पट्टी करना भी श्रावश्यक है। शुक्ल जी के इन संकेतों में उसकी कमी महसूस होती है।

ध्वित-नाटक साहित्य की उच्चता एवं स्तर के विषय में निस्सन्देह कहा जा सकता है कि 'मेड टु ग्रार्डस्' के कारण उनका कोई साहित्यिक स्तर स्थिर नहीं किया जा सकता। कुछ नाटक ग्रवब्य ही ग्रपना साहित्यिक मूल्य भी रखते है पर उनकी सख्या वहुत थोड़ी है।

श्राज का हमारा नाट्य-साहित्य यहाँ तक ग्रा चुका है कि बड़े-बड़े

नाटम प्रव क्वांस ले रहे हैं। एकांकी का वालक नवीन गति से मचल रहा है। मशीन-युग में चल-चित्रों का माध्यम—नाटक श्रीर एकांकी—दोनों को मिला है, पर शाज रेडियों ने एकांकी के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया है। संगीत के प्रसाधन से इसे श्रीर भी वल मिल गया है। शाज जिन परिस्थितियों से होकर एकांकी गुजर रहा है, उसका भविष्य जज्ज्वल श्रीर शाझाजनक प्रतीत होता है।

# डा० रामकुमार वर्मा

हिन्दी के नाटककारों में, विदोषतः एकांकी नाटककारों में डा॰ रामकुमार वर्मा का स्थान ध्रग्रगण्य है। यद्यपि डा॰ वर्मा ने श्रपनी किवताओं के नाथ माहित्य-क्षेत्र में पदापंग्रा किया है फिर भी एकांकी का नाम ध्राते ही, उसके सूत्रपात करने वानों में उनका नाम लिया जाता है। एकांकी कला तथा उनके स्वरूप—दोनों ही क्षेत्रों में डा॰ वर्मा ने विचारक की भाँति प्रयोग किये हैं और एकांकीकारों का मागं-प्रदर्शन किया है। वस्तुतः ध्रापने हिन्दी-साहित्य को एकांकी की नदीन जिल्पमयी थिधा ही नहीं दी है वरन् विचारधारा की हिन्द से भी नवीनता प्रतिपादित की है।

टा० वर्मा को विगत साहित्यिक-युग ने एक ऐसी पृण्डभूमि दी धी जिस पर रास्ता बनाना तो प्रासान था, प्रपनी कलात्मकता श्रीर विचारधारा को प्रयोग के माध्यम से घरा उतारना श्रवस्थमेव कटिन था। नाटक-क्षेत्र में 'प्रसाद' जी ने इतिहास-गत सत्य को श्रपनाया था भीर सोज तथा तत्थ्यगत अन्वेषण का सम्बल लेकर भावाभिव्यक्ति के लिए मीमाएँ बना दी थीं। उनके पञ्चात् श्राने बाले नाटककारों के लिए सीमाएँ बना दी थीं। उनके पञ्चात् श्राने बाले नाटककारों के लिए रास्ता साफ दिलाई देने पर भी उन्हें बहुत संभव कर कदम उठाने थे। डा० वर्गा ने ममय की इस मांग को भली-भांति पहचाना और इसी कारण नमनामयिक मत्यों की उपेक्षा करना सम्भवतः उनसे नम्भव नुगी हो सका है।

पान्चारय गाहित्य का शब्ययन और उसके एकांकी यह स्वरूप भी डा॰ वर्षों के लिए बड़ा ही स्पष्ट हो गया था। विद्युक्त मामाजिशना के प्रति मुनगने वाल विद्रोह ने भावनाप्रधान डा॰ वर्षों के हृदय को पपनी प्रोर सीन विष्या है। फलतः समाज पौर इतिहास की कोमल प्रोर ही डा॰ वर्षों के एकांकी नाटकों की भाव-सूर्ष बन नकी है। टा० वर्गा के एकंकियों की सब में बड़ी विधेषता है 'पात्रगत मनोविज्ञान' । अन्तर्द्वन्द्व और परिश्यत्मक मनोविज्ञान के सफल चित्रण में जितनी सफलता इन्हें किली है; सम्भवतः किसी अन्य नाटककार को नही । यही कारण है कि इनके पात्र, प्रेमचन्द्र के पात्रों की भौति, हमारे अपने मालूम होते हैं, जीते-जागते नजर आते हैं और ऐसा मानूम होता है कि पात्र अपने आप हो हमारी महानुभूति पर हावी हो रहा है। अमाद तथा उनके महयोगी नाटककारों के विषय में यह आक्षेप

लगाया जाता है कि उनके नाटक रंगमंत्र के योग्य नहीं ठहरते । यह सही

है कि न तो उस समय रंगमंन का नोई स्वरूप था, न संस्कृत रंगमंच की कोई उपयोगिता रह गयी थी थीर प्रसाद जी ने इन नाटकों की रंगमंच के लिए न तो लिखा ही था। रंगमंच की पुकार उसके बाद वी देन है। डा॰ वर्मा तथा श्रन्य सहयोगी नाटककारों का यह उत्तरदायित्व था कि इस श्रोर प्रयत्न करते। प्रसन्नता की वात है कि टा॰ वर्मा के एकांकी नाटक हिन्दी नाटकों की इस कमी की पूरा करने की दिशा में सफल प्रयोग हैं। इनके नाटकों की भाषा, भाव, गैली, मनोविज्ञान तथा चित्र-चित्रण पाठक श्रीर दर्शक दोनों को श्रपनी श्रोर श्राकित कर सकती है—इसमें दो मत नहीं हो सकते। 'संकलनत्रय' को डा॰ वर्मा ने श्रपनी नाटक-कला में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है श्रीर इसके विषय में ऋतुराज संकलन में स्पष्ट भी कर दिया है कि "मेरी इप्टि में संकलनत्रय का महत्वपूर्ण स्थान है। एक सम्पूर्ण कार्य एक स्थान या एक ही समय में हो जाना में एकांकी के लिए श्रावश्यक समभता हूँ।"

श्रभी तक डा० वर्मा के कई एक एकांकी संग्रह प्रकाश में श्राये हैं जिसमें चारुमित्रा, रेशमी टाई, ऋतुराज, रजतरिम, सप्तिकरण विभूति श्रुवतारिका, दीपदान, कामकन्दला, रिमझिम, कौमदी-महोत्सव श्रादि ना नाम लिया जा सकता है।

## समुद्रगुप्त पराक्रमांक

[ भांडागार फा बाहरी कक्ष । दिवालों पर अनेक नृत्य मुद्राओं में नर्तिकयों के चित्र हैं। स्फटिक पत्यरों के स्तम्भों पर दीपों का आलोक ही रहा है। पीछे लोह-दण्डों से बना हुआ परिवेदण है।\*\*

मंच के बीच में समुद्रगुष्त खड़े हुए हैं। शरीर पर श्वेत और पीत गरियान । रत्न-जटित शिरीभूषण, केश उन्मुक्त, पुष्ट वसस्यल जिस पर रत्नों के हार । कटिबन्ध में खड्ग । उनकी मुद्रा गंभीर है।

जनके दाहिनी ओर सिहल के राजदूत घवलकीति और राज्य के महावलाध्यक्ष कोदण्ड हैं झौर बाई झोर भांडागार के झिंकररण मिएभड़ हैं। घवलकीति का पीत, मिएभड़ का द्वेत और कोदण्ड का नील रिप्धान है। कोदण्ड सैनिक वेश में है। द्वार पर शस्त्र लिए हुए प्रहरी। समुद्रगुष्त घयलकीति को सम्बोधन करते हुए कहते हैं।

समुद्रगुप्त —तो श्रव यह निश्चय है कि भांडागार में वे रत्न नहीं हैं? घवलकीर्ति —यह तो श्रापने स्वयं देखा, सम्राट्! किन्तु भांडागार में इस तरह चीरी हो जाना श्राश्चर्यजनक है। भांडागार के श्रीयकरण मणिभद्र स्वयं कुछ नहीं कह सकते।

समुद्रगुप्त—(तीय स्वर से) वयों नहीं कह सकते ? (मिएाभद्र से) रिणभद्र, वे रत्न कैसे चोरी चलें गये ? ब्राज तुम्हारा वह विश्वास कहाँ हैं जिसमें दो युगों में पाटलिपुत्र की मर्यादा पोषित होती ब्रा रही थी ? यह विश्वास कहाँ है जिसमें मैंने तुम्हें कौदाल, कांची बीर देवराष्ट्र की सम्पत्ति गोंपी थी ? वह विश्वास कहां है जिसमें लिच्छवि-वंश ना गौरव लिगास करता रहा है ? चया जम विश्वास में विष प्रवेश कर गया ? यही से बड़ी सम्पत्ति की रक्षा करने का यनुभव लेंकर भी तुम दो हीरक-

राष्ट्रीं की रहा। नहीं कर गरे हैं तमने भेरे विश्वास में इन कर्नों की केवल की जिनवारियों में चाय लगा थे। तुम्हार्ट के धम-बिस्टू की दल-बिस्टु कर जाते...... हैं ( सूर होटा में )

मिल्यक्र-नसार् दिसमार शिका महि क्षेत्र कोम में सार विन्तु निक्रण कर धारी चर्यों पर निर कर कर मनते कि में निर्में हो। यदि रक्त-विन्तु पाणी-पहिर है की पाप उन्हें दूसरी भाषा देशिए किनु मार्का विस्थान की परिचला क्षेत्रण में जीवन की ऐसी नहीं पाहिना।

चयलकोति—समाद् ! चापना विस्ताम सोगर पीन असे जीवन की रक्षा करना नाहेगा विन्तु मणिनः की संबंधा ने रूनीं का नीर्ध जाना चारपर्यजनक है।

मिराभद्र—यह मार्ट्स ही मुन्ने मृत्यु-बीहा पा बर्जन है। समाइ है जिस विस्थान में मुन्ने प्रश्नेत्र यह भी संभित्र विधि मीपी भी वर्षी विस्थान मी परिवता से भी वन रहती की सन्द्रा की भी फिर भी प्राच-गाल के राज्य-भोटागार में नहीं पाये गरे।

समुद्रगुप्त-भांडागार के एत-मात्र धांगरारी तुम्हीं हो मणिनरें, फिर तुम्हारी श्रामा के बिना यहाँ कोई प्रचेस ही क्षेत्रे कर मकता है ?

पवनकीर्ति—मही नो ब्रान्नमं है मसाट् ! समुद्रगुप्त—श्राद्यमं ने अपराध नहीं छितामा वा महता, गवन-

कीति ! अपराय की सहस्र जिल्लाएँ है जो अग्नि-दिगा की भौति चंचन हो सकती है और (मिशाभद्र से) तुम यह जानते हो मिशाभद्र कि भांडा-गार की रक्षा क्या है ? जिल्ल कुपाया के दर्पण में बन्द की हुई छावा है, कृपाण से मुक्त नहीं की जा सकती र्रे

मिराभद्र — सम्राट् ! में अपनी मृत्यु हाथ में लेकर थाया है। रत्नों का रो जाना ही मेरे लिए सबसे बड़ा अपराध है। गुफे केवल अपेट भाग्य-दोप का दुःस है। यदा और कीति के साम सम्राट् की सेवा पर्लीं वर्षों तक करने के अनन्तर इस भीति अपयश में मेरे जीवन का अल हो। मैं आपसे अपनी मृत्यु माँगने गाया है, सम्राट् !

समुद्रगुप्त-मुभ से श्रपनी मृत्यु माँगने की भी श्रावश्यकता है ?

मिशाभद्र-रेत्त्य है, तश्राट् ! में श्रभी तक श्रपने जीवन की समाप्ति

कर पुका होता किन्तु श्रापके समक्ष श्रपनी श्रात्मा की पवित्रता के दो

शेव्द कहे विना मुभे परितोप न होता। श्राप मेरे चरित्र के सम्बन्ध में
श्रमेक बातें सोच सकते थे। श्रव मुभे सन्तोप है, मैंने श्रपनी श्रात्मा की
पुकार श्राप तक पहुँचा दी। श्रव मुभे श्राज्ञा दीजिये।

समुद्रगुष्त—मणिभड़, श्रभी तुम नहीं जा सकीगे। तुम्हारे उत्तर-दायित्व के साथ राज्य का भी उत्तरदायित्व है। यदि तुम्हारे श्रधिकार में नुरक्षित की गयी भ्रव्यमेघ यज्ञ की सारी सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती तो मुफें इतना दुःख न होता जितना इन दो रत्न-खण्डों की चोरी से हुशा है। इन रत्नों के साथ जैंमे मेरे हृदय की सारी शान्ति श्रीर पवित्रता भी खो गई है।

धवलकौर्ति —सम्राट्, उन रत्नों का सम्बन्ध भी पवित्रता से ही था। वे मिहल की राजमहिषी के कण्ठहार के प्रधान रत्न थे जो भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के लिए विद्वास से धापकी सेवा में भेज गये थे।

समुद्रगुप्त-(श्रादचर्य से) राजगहियी के कण्ठहार से।

धवलकीति—हाँ, सम्राट् ! में ही राजदूत वनकर मिहल से यह सम्पत्ति लाया हूँ। जब सिहल के महासामन्त सिरिमेघवम्न ने एक लक्ष स्वर्ण-गुडाएँ वोधगया में एक विशाल मठ बनवाने श्रीर भगवान् बुद्धदेव की रत्त-जड़ित स्वर्ण-प्रतिमा निर्माण करने के निमित्त स्वर्ण-पानों में मुस्रिजित की तब राजमिहिंगी कुमारिला के नेत्रों में श्रद्धा ग्रीर प्रेम के भौन छनक भाव । उन्होंने उसी समय महासामन्त से प्रायंना की कि जनके कण्ठहार के दो प्रधान हीरक-राण्ड श्रीमान् की सेवा में इस प्रजु-रीध के साथ भेज दिये जायें कि ये हीरक-मण्ड भगवान् बुद्धदेव की प्रतिमा के श्रंपुष्ठ नयों के स्वान पर विजड़ित हों । सम्राट् ! ये दोनों हीरक जैसे राजमिहिंगी फुमारिला की श्रद्धा और प्रेम के दो पवित्र श्रश्च-विन्दु थे, जो धाज को गये । इन श्रव्य-विन्दु श्रों के को जाने मे भगवान् के चरणों पर राजमिहिंगी की श्रद्धांजित न चढ़ सकेगी । प्रतिमा श्रपूर्ण रहेगी, गसाट !

समुद्रगुप्त—( श्रावेग से ) तब मुनो, घवलकीति, तुम सिहल के राजदूत हो। मेरे महासामन्त की भेंट लाने वाले। तुम्हारे सामने मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट् समुद्रगुप्त यदि उन रतन-खण्डों को नहीं खोज सका तो वह अपने राज्याधिकार का ध्यान छोड़कर भगवान् बुढि-देव की प्रतिमा के सामने कठोर प्रायदिचत करेगा।

मिर्गभद्र-सम्राट्.....

धवलकोर्ति-सम्राट्......

समुद्रगुप्त — रुको राजदूत, यह प्रतिज्ञा समस्त साम्राज्य के भाग्य-निर्णय के साथ घोषित की जा रही हैं। यह युद्धदेव के प्रति मेरे स्रपराध का दण्ड है। राजमिहणी के विश्वास की रक्षा न कर सकने वाले का प्रायिक्त है। मेरी घोषणा प्रवास्ति हो और इसके साथ मेरे भांडागार के ग्रियकरण का कलंक भी श्रमर हो। (मिर्गभद्र की ओर दृष्टि) वह किस रूप में हो, इसका निर्णय श्रभी होगा।

मिएाभद्र—सम्राट्! श्रापके इन शब्दों में मेरी मृत्यु भी मेरा उप-हास कर रही है। जीवन का एक-एक क्षण मुभे यूल की भौति चुभ रहा है। मैं श्रापकी सेवा से जाने की प्राज्ञा चाहता हूँ जिससे में श्रपने इस कलंकित जीवन को श्राधक कलंकित न कर सकूँ।

समुद्रगुप्त—ठहरो मणिभद्र, मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति में तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। तुम्हारी आत्म-हत्या से मेरा कलंक मिटेगा नहीं। मुभे कुछ वातों के जानने की आवश्यकता है।

धवलकीर्ति सम्राट्! यदि एकान्त की ग्रावश्यकता हो तो मुभे श्राजा दीजिए।

समुद्रगुप्त — नहीं घवलकीर्ति, ठहरो, तुम्हारे ही संरक्षण में यह मेटे श्रीर प्रतिमा निर्मित हुई है, तुम्हारी उपस्थिति भी श्रावश्यक है। मुर्फे विश्वास है, तुम श्रपने संकेतों से मेरे प्रयत्न में सहायता पहुँचाझोगे। (मिणिभद्र से) विश्वासपात्र मिणिभद्र, वे रत्न-खण्ड सर्वप्रथम तुम्हारे अधिकार में कव श्राये?

मिंगभद्र-सम्राट्, भ्राज से दस दिन पूर्व।

समुद्रगुप्त -- फिर नुमने उन्हें कहाँ मुरक्षित किया ? मिएाभद्र--- इसी कक्ष में, सम्राट्।

समुद्रगुष्त-धन्तरंग प्रकोष्ठ में वयो नहीं ?

मिएिभद्र—मुफे घवलकीति से यह सूचना मिली थी कि मठ श्रीर प्रतिमा का कार्य सम्पूर्ण हो गया है श्रीर घव वे शीघ्र ही शिलिपयों को दे दिये जावेंगे, श्रतः उन्हें श्रन्तरंग प्रकोप्ठ में रखने की श्रावश्यकता नहीं है।

चवलकीति—महासायन्त से मुक्ते यही ब्राज्ञा मिली थी कि मैं घोद्यातिषोद्य मठ श्रीर प्रतिमा के निर्माण श्रीर उनकी व्यवस्था की चेप्टा करूँ। सिहलद्वीप के भिक्षुश्रों को बोधगया में बढ़ा कष्ट होता है, इसलिए उनकी सुविधां के लिए बीद्यातिशीद्य मठ का निर्माण होना या। सम्राट्! श्रापकी प्रसंसा नहीं की जा सकती कि श्रापने भागवत धर्म में विद्यास रखते हुए भी बोधगया में भिक्षुश्रों के लिए मठ बनवाने की श्राज्ञा दे दी।

समुद्रगुप्त--यह मेरी प्रशंसा का अवसर नहीं है, धवनकीर्ति ! तो मठ ग्रीर प्रतिमा भी भीन्न व्यवस्था करने की प्रेरणा से ही तुमने मणिभद्र को श्रन्तरंग प्रकोण्ड में रत्न रखने से रोक दिया ?

धयलकौर्ति — हाँ, सम्राट् ! शिल्पी प्रतिमा-निर्माण का कार्य समाप्त कर चुके थे । दो-एक दिन में ही भगवान् बुद्धदेव के चरणों में वे रस्न विजिद्दित कर दिये जाते ।

समुद्रगुष्त—दो-एक दिन का प्रथ्न नहीं था। प्रश्न मणिभद्र के उत्तरदायित्व और तंरक्षण का था। फिर वे रतन धिल्पियों को दूसरे दिन दे दिवे गये ?

मणिभद्र—नहीं सम्राट्! वे रत्न शिल्पियों को नहीं दिये जा सके। शिल्पियों को केवल पूर्व निश्चय के अनुसार चार सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ दी गयी थीं।

समुद्रगुप्त- वर्षो ?

मणिभद्र—उनका पारिश्रमिक चार सहस्र मृद्राएँ निव्चित किया गया था।

समुद्रगुप्त —तो कार्य समाप्ति के पूर्व ही उन्हें पारिश्रामक वर्षों दिया गया ?

मिशाभद्र-धवलकीति का श्रादेश था।

समुद्रगुप्त—( ध्वलकीति से ) क्यों धवलकीति, तुम्हारा शह निर्देश सत्य है ?

ानदश सत्य ह : धवलकोति—सत्य है सम्राट् ! में उन शिल्पियों के कार्य से बहुत प्रमुख था । वे सम्बन्ध स्थानिक प्रवन्ति नार्व हैं सम्मे निस्तास था कि

प्रसन्न था। वे त्रत्यन्त सात्विक प्रवृत्ति वाले हैं, मुक्ते विश्वास था कि पुरस्कार पाने के उपरान्त भी रतन जड़ने का कार्य पूर्ण करेंगे।

समुद्रगुप्त-ऐसे कितने गिल्पी है ? धवलकीर्ति-केवल दो हैं, सम्राट्।

समुद्रगुप्त-- उनके नाम ?

घवलकीति-घटोत्कच ग्रीर वीरवाहु।

समुद्रगुप्त-इस समय वे कहाँ हैं ?

घवलकीर्ति—वे श्रपने श्रावास स्थान पर ही होंगे।

कोदण्ड — नहीं सम्राट् ! वे इस समय वंधन में हैं। जब से रत्नों की चोरी का समाचार प्रसिद्ध हुमा है तब से मैंने उन शिल्पियों को बन्दी कर रक्का है। मैं उन्हें मणिभद्र के साथ ही ते ग्राया था। वे बाहर है। यदि म्राजा हो तो उन्हें सम्राट् को सेवा में उपस्थित करूँ।

समुद्रगुप्त — में तुम्हारी सतकंता से प्रसन्न हूँ महावलाव्यक ! यद्यपि में जानता हूँ कि शिल्पी निर्दोपी है फिर भी में उनसे विचार-विशिमय करना चाहूँगा । उन्हें मेरे समक्ष शीन्न उपस्थित करो ।

कोदण्ड-(सिर भुकाकर) जो ग्राज्ञा ! (प्रस्थान)

समुद्रगुप्त—तो धवलकीर्ति, तुम शिल्पियों के कार्य से बहुत प्रसन्न हो ?

धवलकीर्ति—हाँ सम्राट्, उन्होंने केवल एक मास में भगवान की प्रतिमा का निर्माण कर दिया।

समुद्रगुप्त - उनके निर्माण कार्य की कुछ विशेषता ?

धवलकीर्ति—सम्राट्, भगवान् की प्रतिमा इतनी सजीव ज्ञात हीती है मानों वे संघ को उपदेश देने के ग्रनन्तर अभी ही मौन हुए हैं। उनकी प्रतिमा का ग्रोज श्रन्य धर्मावलिम्बयों को भी बौद्ध धर्म का ग्रोर ग्राकपित करने में समर्थ है।

समुद्रगृप्त-जौर बोधगया का मठ पूर्ण हो गया ?

यवलकीति—हाँ सम्राट्, मठ भी पूर्ण हो गया। एक सहस्र भिक्षुत्रों के निवास के योग्य उसमें प्रवन्य है श्रीर उसमें कला-कुशलता की चरम-सीमा उपस्थित की गयी है।

समुद्रगुप्त--कला-कुशलता की सीमा से वया तात्पर्य है ?

पवलकीर्ति—सम्राट्, बुद्धदेव के जीवन के समस्त चित्र दीवालों पर श्रंकित है। महामाया का स्वप्न, गीतम का जन्म, बावय-नरेश का मुखोत्सव, वैराग्य उत्पन्न करने वाले रोग, जरा श्रौर मृत्यु के चित्र, भगवान् गीतम का महाभिनिष्क्रमण, फिर उनकी तपस्या एवं उनके वोधिसत्व का रूप। संघ को उपदेश देते हुए उनके चित्रों में महान् ऐस्वयं श्रीर विभूति है।

समुद्रगुप्त-श्रीर भिक्षुश्रों की सुविधा का क्या प्रवन्ध है ?

धयत्तकीति समुद्धि प्रवज्या की समस्त सामग्री प्रत्येक कक्ष में संचित है। चीवर श्रादि की ब्यवस्था देश के श्रन्य मठों से इसमें विशेष रहेगी। संक्षेप में, श्रव फिसी भी भिक्षु को नौकिक एवं पारलीकिक दृष्टि से किसी प्रकार की भी श्रमुविधा नहीं हो सकती।

समुद्रगुप्त—तव तो मठ के समस्त विल्पियों को राज्य की श्रोर से भी पुरस्कार प्रदान किया जायेगा, घटोत्कच और वीरवाहु को तो विशेष रूप से । धवनकीर्ति, पाटिनपुत्र में इन दोनों विलियों को श्रावास कहाँ रिया गया था ?

धवतकीति--जिस श्रतिथिशाला में मैं हूँ उसी के समीप राय-युदीर में।

समुद्रगृप्त — तुमने रतन-राण्डों के सम्बन्ध में उनमे कभी चर्चा की थी ?

पवतकीति—भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के नमाप्त होने के कुछ पहने ही मैंने भगवान् के चरण श्रंगुष्ठ में स्थान छोड़ने की श्राज्ञा देते समय उनमें उन रत्नों की चर्चा की थी किन्तु उनसे श्रव्धिक यार्तालाप कर भ्रपना समय नष्ट करना मैंने कभी उचित नहीं समझा। भ्रावश्यक भ्रादेशों के भ्रतिरिक्त मैंने उनसे कभी कोई वात ही नहीं की।

समुद्रगृप्त — तुम सिहल के प्रमुख कलाविद् हो । फिर कलाकारों से वार्तालाप करना समय नष्ट करना नहीं है, घवलकीर्ति !

धवलकीर्ति—सम्राट्, ग्राप जैसे उत्कृष्ट कलाकार से वार्तालाप करना सीभाग्य की वात है, किन्तु सभी कलाकार मेरे समय के अधिकारी नहीं हैं।

समुद्रगृप्त — तुम भूल करते हो, घवलकीति । प्रत्येक कलाकार में कुछ न कुछ मीलिकता ग्रवश्य होती है । कलाविद को चाहिए कि कलाकार की उस मीलिकता का वह रत्नों की भाँति संग्रह करे ।

(महाबलाध्यक्ष कोदण्ड का प्रवेश) कोदण्ड—(प्रगाम कर) सम्राट्! दोनों शिल्पी यहाँ उपस्थित है। . ग्राज्ञा हो तो उन्हें भीतर लाऊँ।

समुद्रगुप्त - यहां उपस्थित करो।

(महाबलाध्यक्ष का प्रस्थान)

समुद्रगुप्त —धवलकीति, ये दोनों शिल्पी क्या सिहल के निवासी हूँ? धवलकीर्ति —हाँ, सम्राट्। इनका भ्रादि-स्थान तो सिहल ही है किन्तु ग्रपनी कला-प्रियता के कारण ये समस्त देशों का पर्यटन करते हैं।

(महाबलाध्यक्ष कोदण्ड के साथ घटोत्कच और वीरबाहु का प्रवेश। वे प्रणाम करते हैं।)

कोदण्ड - (संकेत करते हुए) सम्राट्, यह शिल्पी घटोत्कच है ग्रीर यह वीरवाह।

समुद्रगुप्त —घटोत्कच श्रीर वीरवाहु, सिहल के शिल्पी, किन्तु समस्त देश के श्रभिमान, राज्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करने वाले, प्रस्तर में प्राण फूँकने वाले। तुम लोगों से राज्य की शोभा है। इसीलिए ये किसी भी दण्ड-विघान से दण्डित नहीं हो सकते। क्यों शिल्पी, सौन्दर्य किसे कहते हैं?

घटोत्कच —सम्राट् ? विषम वस्तु में समता लाना ही सीन्दर्य है। समुद्रगृह — ग्रीर तुम क्या समऋते हो, वीरवाहु ?

वीरवाहु—हृदय में श्रनुराग की सृष्टि का साधन ही सुन्दरता है।
समुद्रगुप्त—यदि चोरी के प्रति हृदय में अनुराग है तो वह भी
गुन्दरता है, शिल्पी।

योरवाहु —सम्राट्, यदि चोरी सात्विक भावों से होती है तो वह सुन्दरता ही कही जा सकती है।

समुद्रगृप्त-सात्विक भावों से कौन सी चोरी होती है ?

वीरवाहु- कला, कविता और नारी हृदय की सम्राट्, जिसमें निरीहता और पवित्रता है।

समुद्रगृप्त-ग्रीर रत्न-खण्डों की चोरी शिल्पी ?

वीरवाहु—वह सुन्दरता नहीं है सम्राट्, रत्न-खण्डों की चोरी में तृष्णा है, जिसका रूप दु:ख है ग्रांर फल पाप है।

समुद्रगुप्त--- गुम्हें ज्ञात है कि सिहल से भेजे गये रतन-खण्ड चौरी चले गये ?

वीरवाहु—सम्राट्, मुक्ते इसकी यूचना महावलाध्यक्ष से जात हुई। यही कारण है कि प्रातःकाल से हम लोगों की स्वतन्त्रता पर प्रतिवन्ध है। हमारी रक्षा कीजिये सम्राट्!

समुद्रगुप्त-तुम लोगों की पूर्ण रक्षा होगी जिल्पी, पहले मेरे प्रश्नों के उत्तरं दो।

वीरबाहु -- प्रदन कीजिये राञाट् !

समुद्रगुप्त-- तुम्हें दो सहस्य स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त हो चुकी हैं।

बीरबाहु—हो, सम्राट।

समुद्रगुप्त-श्रीर घटोत्कच, तुम भी पुरण्कृत हो चुके हो ?

घटोत्कच-हाँ, समाद् ।

पीरबाहु-या तम लोगों की कार्य-कुशनता ?

समुद्रगुप्त-क्या इस बात की सम्भावना हो सकती है कि उन दो सहस्र मुद्राभों में वे रत्न-राण्ड भी चले गये हों ? पटोन्सम्—गमाद्, सदि सन-तरह उन स्वर्ध-मुझर्षी में निवर्त तो भ मनिभद्र को इस बात की सूचना कारव देखा ।

धीरबाहु-- गराद, नेरा निवेदन तो गर १ कि यदि गुर्ने दी गरम मुद्राक्षी ने एक मुद्रा भी प्रतित निवर्ती नी में यह मिलाई के पर भेज देता।

समुद्रगृत--दम यान भा प्रमाप ?

घटोरकच-मसाट, हृदय की निमंतना का प्रमाण केवल निमंत हृदय ही पा मकता है।

समुद्रगुप्त-वयो विवयी, वया तुन्ते पेदं शुष्य या निमेत्ता में

विस्थाय नहीं है ?

घटीत्कत्त—गसाद्, हमें पूर्ण तिस्वाय है इसीतिए आपमें निषेदन करना चाहते हैं, दूसरी वात यह है कि धात्र तक मैंने अगवान मुद्धेय की प्रनेक प्रतिमाओं का निर्माण दिया है। भगवान मुद्धेय की प्रनेक प्रतिमाओं का निर्माण दिया है। भगवान मुद्धेय की प्रनिमा तथा उनके जीवन के घनेक चित्रों को धंकित करने-रख्ते मेर्द हृदय में—मेरी कला मे—भी तथागत की प्रतिमा का निर्माण हो गया है। उनके प्राथम मेरी प्रत्येक स्थान में नियान करते है। उनके 'आप मस्य' मेरी प्रत्येक यति धीर मिन में मंनारित हो गये है। ऐसी स्थिति में रला-प्रवर्शों की प्रभा मेरे चरित्र को कलंकित नहीं कर मकती।

समुद्रगृप्त - वीरवाहु, तुम्हारा वया कवन है ?

चीरबाहु—मझाट्, जो रतन-मण्ड भगवान् बुद्धदेय के परमाों में स्थान पाने के लिए भेज गये थे ये रतन-मण्ड निर्मीय हैं और हम नोगों के हृदय सजीव। निर्मीयों में इतनी यानि नहीं है कि वे सजीवों की प्रकृति में बाधा यान नकें। यदि आवश्यकता होगी तो रत्न-राण्डों के स्थान पर हम नोग अपने हृदय भी विजठित करने के लिए प्रस्तुत होंगे।

समुद्रगुप्त — दोनों ही उच्चकोटि के कनाकार नया शिल्पों है। घटोरकच, युट्देव की प्रतिमा का निर्माण हो गया ?

घटोत्कच-समाद् ! पिछ्ने सप्ताह ही पूर्ण हो गवा ।

समुद्रगुप्त--फिर रत्न-गण्डों को प्राप्त करने में इतना निलम्ब वयों हुमा ? घटोत्कच-सम्राट् ! मैंने घवलकीति से रत्न-खण्डों के शीघ्र पाने की चायना की थी, किन्तुं उन्हें भवकाश नहीं था।

समुद्रगुप्त-धवलकीर्ति को श्रवकाश नहीं था ! क्यों धवलकीर्ति ? धवलकीर्ति-सम्राट, मैं पाटलियय का उपासक हैं । उसके सींदर

धवलकीति—सम्राट्, मैं पाटलिपुत्र का उपासक हूँ। उसके सींदर्य को देखने की इच्छा अनेक वर्षों से मेरे हृदय में थी। मैं यहाँ श्राकर उसे श्रीवक से श्रीवक देखने के श्रवसर प्राप्त करना चाहता था। श्रतः मैं प्रायः श्रापके नगर के उद्यानों श्रीर सरोवरों ही में श्रपने जीवन की श्रमुभूतियाँ प्राप्त करता था, किन्तु फिर भी शिल्पियों की श्रावदयकता का च्यान मुभे सदैव रहा करता था।

पटोत्कच — किन्तु गत सन्ध्या को जब मैंने धापकी सेवा में धाने की चेप्टा की तो मुक्ते जात हुआ कि पाटलिपुत्र में धाकर नृत्य-दर्गन की श्रोर आपकी विशेष अभिक्षि हो गर्या है, धाप नृत्यों की विशेष भावभंगिमाओं के चित्र-संग्रह में इतने व्यस्त रहते है कि धापको मेरी प्रार्थनाओं के सुनने का अवकाश नहीं था।

धवलकीर्ति—घटोत्कच, मेरी रुचि की नमालोचना करने का तुम्हें कोई श्रधिकार नहीं है।

समुद्रगुष्त—पान्त, धवलकीति, मुभे यह सुनकर प्रसन्नता है कि तुम्हें मृत्य-कला विशेष प्रिय है। तुमने पाटलिपुत्र की राजनतंकी का नृत्य, सम्भव है, श्रभी तक नं देखा हो। वह भी में तुम्हें दिखलाने का प्रयत्न करूँगा।

धवलकीति—सम्राट्, श्रापकी विशेष कृपा है।

समुद्रगुष्त-में उसे श्रभी दिखलाने का प्रवन्य करू गा। मेरे मृत्य देखने का समय भी हो गया। ( महाबलाध्यक्ष से ) कोदण्ड, तुम इन सिलिपमों को न्याय-सभा की उत्तरशाला में स्थान दो। (शिलिपमों से) विल्पी पटोत्कच श्रौर बीरवाह, तुम्हारे उत्तरों से में प्रसन्न हुआ। राजकीय नियमों के धाचरण में यदि शिल्प-साधकों को कुछ श्रमुविधा हो तो वह उपेक्षणीय है। तुम ध्यान मत देना शिल्पी!

वीरवाहु-समाद् की जो ग्राजा।

धवतकीति - मुक्ते कोई अमुविषा नहीं है, सम्राट्।

समुद्रगुप्त—सी तुम जीम लागो, राजनीतीनमी की किसी प्रकार की प्रमुख्या नहीं होनी चाहिए।

कोदण्ड- जो पाला, नसाट् !

समुद्रगुष्त—धीर मुनो वी किए, राजननेकी स्तप्रभा को इसी स्थान पर ग्राने की भूचना दो। ग्राज में प्रकर्तान के साथ इसी स्थान पर राजनतेनी का नृत्य देगीया।

( कोडण्ट और जिल्पी जाने के निग् उचन होते हूँ । )

समुद्रगुष्त-पौर गुनो, त्रियद्धिका में करना कि वह मेरी वीजा ले ग्राये। याज में किर बीजा यजाना चारता है। विद्यारा के स्पर्ने का गन्धान हो।

फोदण्ड--जी मामा ।

( कोवण्ड धोर शिरिपयों का प्रस्थान )

समुद्रगुप्त — (मिर्सभद्र से ) मिलभद्र दुर्भाग्य ने यदि यह तुम्हारी श्रन्तिम राश्रि हो तो तुम्हे धपने मद्भाट् की बीका मुन्ने का ध्रयमद वयों न मिले ? तुम भी मुनो ।

मणिभद्र--यह मेरा गीभाग्य है, गसार्। धवलकीति-सम्राट् फिर मुने म्राना दीजिये।

समुद्रगुष्त - भयों यवलकीति, यदा तुम हमारी यीणा नही मुनीमे ग्रीर राजनतंकी का नृत्य नही देखींगे ? तूम तो वर्ष भारी कलाकार हो।

धवलगीर्ति—मञ्चाद् ! प्रशंमा के लिए धन्यवाद । में नोचता है कि कला की उपासना के लिए पियय मन की ग्रावञ्यकता है । मेरा मन इस घटना से बहुत ग्रन्थवस्थित हो गया है ।

समुद्रगुप्त—में अपनी वागी में नुम्हारा हृदय व्यवस्थित कर दूँगा। फिर श्राज इन वादन श्रीर नृत्य को नृम मणिमद्र की विजय विदा समभो। जिस मणिभद्र ने पच्चीस वर्षों तक राज्य की मेवा की है उसके श्रन्तिम क्षणों को मुक्ते श्रविक से श्रविक मृत्रमय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस मंगल-बेला के समय तुम्हे भी उपस्थित रहना चाहिए। पाटलियुत्र के न्यायाचरण में सिहल का भी श्रतिनिधित्व हो।

धयलक्षीति-सम्राट्, श्रापका कथन मत्य है, किन्तु मैंने समभा, सम्भवतः ग्राप एकान्त चाहते है।

समुद्रगुप्त-नहीं घवलकीति, ऐसे समारोहों में एकान्त टूटे हुए तार की तरह कप्टदायक है।

घवलफीति—(संभलकर) श्रीर सम्नाद, श्रापकी वीणा में वह स्वर है जो दूटे हुए हृदयों को भी जोड़ देता है। श्राप संगीत-कला में नारद श्रीर तुम्बरू को भी लिजत करते हैं। श्रापकी संगीत-प्रियता इसी वात से स्पष्ट है कि श्रापकी मुद्राश्रों पर वीगा। बजाती हुई राजमूर्ति श्रंकित है। भैंने सुना है कि श्रापने श्रपने श्रद्यमेध यज्ञ के उपरान्त दो मास तक संगीतोत्सव किया था।

समुद्रगुप्त-यह सरस्वती की साधना करने की सबसे सरल युक्ति है, प्रच्छा धवलकीति तुम भी तो संगीत जानते हो ?

धवलकीति—सम्राट्, श्रापकी साधना की समानता कीन कर गकता है, किन्तू इस कला की श्रोर मेरी श्रीकरिच अवश्य है।

समुद्रगुप्त-शीर नृत्य-कला भी तो जानते होंगे ?

धवलकीति—सम्राट्, नृत्य-कला का भैंने अध्ययन-मात्र किया है उसकी विवेचना कर सकता हैं, किन्तु स्वयं नृत्य नहीं कर सकता।

समुद्रगुप्त--नृत्य-गला देपने से प्रेम है ?

पपलकीति-यह मिहल के वातायरण का प्रभाव है।

समुद्रगुप्त—मुक्ते प्रसन्नता है कि सिहल का बानावरण मेरी श्रमिक्चि के श्रमुकूल है। किर तो राजनतंकी के नृत्य से तुम्हे विशेष प्रसन्नता होगी।

भवलकीति-यह सम्राट्का अनुग्रह है।

समुद्रगुप्त—ग्रीर मेरी वीणा के स्वर भी व्याज मुप्तस्ति होंगे। धवलकीर्ति—श्रापकी वीणा तो स्वर्गीय संगीत है, सग्नाट्!

भवतकात—प्रापका वाणा ता रचनाय मनात ह, सग्राट् : समुद्रगुप्त—प्रापक नही, पवलकीति । किन्तु संगीत टेंग्परी<u>य</u>

सिभूदिगुन्त न्यायक नहीं, प्रयानकात । गुन्तु नगात उत्पर्ध विभूति की यह किरण है जिससे मनुष्य देवता हो जाता है। हृदय का नगरन कार्नुष्ये बीणा की एक करकार में ही दूर हो जाता है।

(प्रियविशका का बीरणा लिए हुए प्रवेदा । वह प्रणाम करती है ।)

समुद्रगुप्त—घाम्री प्रियटनिये, घाज में फिर घीणा यजाऊँगा। प्रियदनिका—(बीसा घागे प्रस्तुत कर) प्रस्तुत है नद्माट् ! समुद्रगुप्त—(बीपा हाय में निते हुए) वेदारा के स्वर्धों में बीपा

का सन्धान है ।

प्रियद्यानिका—हो मछाट् ! इसी राग की ग्रामा प्राप्त हुई सी ! समुद्रगुप्त—राजनतंथी रस्तप्रभा का श्रद्धार पूर्ण हुमा ? प्रियद्याका—वे तैयार है, श्रापकी मैंया में उपस्थित होने की श्रामा साहती हैं !

समुद्रगुप्त--- उन्हें मृत्य के माथ धाने दो, केदारा स्वरों में । त्रियदद्विक---(सिर सुकाकर) जो बाला । (प्रस्थान)

समुद्रगुष्त—(बीणा के तारों पर उंगितियाँ फैरते हुए) मुनो धवान कीति, केदारा के स्वर में यह भावना है कि करणा की गमस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय में जागृत हो जाती है। ऐसा शात होता है जैसे सारा संसार तरन होकर किसी की श्रांतों ने श्रांतृ बनकर निकलका बाहता है। तारिकाएँ शाकाश की गोद में सिमिट कर पत्तनी किरणों में शायंना करने नगती है, किनकाएँ मुगिला की बेदना से फूल बन जाती हैं श्रीर बिन्दु में हुव कर पृथ्वी के चरणों में श्रास्म-समर्थमा करना चाहती है। श्रब्धा, तो सुनो वह रागिनी।

[समुद्रगुप्त वीगा पर केदारा का स्वर छेड़ते हैं। घीरे-घीरे बजाते हुए वे तन्मय हो जाते हैं। उसी क्षाग् रत्नप्रभा का नृत्य करते हुए प्रवेश। रत्नप्रभा के श्रंग-श्रंग से रागिनी की गति व्यक्त हो रही है। यह श्रठारह वर्षीया सुन्दरी है। सीन्दर्य की रेखाशों में ही उसके शरीर की श्राकृति है। केश-कलाप में पुष्पों की मालाएँ, शरीर में श्रंगराग श्रीर चन्दन की चित्र-रेखाएँ हैं। मस्तक पर केसर का पुष्पांकन। बीच में कुंकुंम का विन्दु। नेत्रकारों में श्रंजन की रेखा। चित्रुक पर कस्तूरी-विन्दु। कण्ठ में मुक्ताहार। हदय पर रत्न-राशि। किट में दौलायमान

किंकरागी श्रीर पैरों में नुपूर। यह केंदारा राग की साकार प्रतिमा वन कर नृत्य कर रही है। साथ ही सम्बाट् समुद्रगृप्त की वीर्गा में निकलती हुई रागिनी राजनर्तकी के पद-विन्यास में माधुर्य भर रही है। कुछ समय नृत्य करने के उपरान्त 'सम' पर राजनर्तकी हाथ जोड़कर भाव-मुद्रा में सम्राट के समक्ष तिरछी होकर खड़ी हो जाती है।) समुद्रगुप्त—(प्रसन्न होकर) मेरे राज्य की उर्वशी! तुम बहुत मुन्दर नृत्य करती हो'''यह पुरस्कार। (गले से मोती की माला उतार कर देते हैं।) रत्नप्रमा—(हाय जोड़कर) सम्राट! मैं इसके गोग्य नहीं हूँ। मुफ से ग्राज दो बहुत बड़े श्रपराध हुए हैं। समुद्रगुप्त—(भ्रान्त होकर) तुम से ? कभी कोई श्रपराध नहीं हुगा।

समुद्रगुप्त — (श्रान्त होकर) तुम सं ! कभी कोई श्रपराध नहीं हुगा।
गीनसा श्रपराध ?

रत्नप्रभा—पहला श्रपराध तो यह है कि मैं आपकी मधुर वीगा।
के श्रनुकूल नृत्य नहीं कर सकी। श्रापके संगीत की मर्यादा कभी भंग
नहीं हुई। श्राज मेरे नृत्य के कारण श्रापका संगीत कलुपित हो गया,

सम्राट् !

समुद्रगुप्त--नहीं रत्नप्रभा, श्रपने नृत्य से तुमने मेरे स्वरों में सहायस ही पहेंचार्य है जानि नहीं !

यता ही पहुँचाई है, हानि नहीं। रत्नप्रभा—सम्राट् में श्रनुग्रहीत हैं। श्रापने कभी मेरे नृत्य के साथ

वीगा नहीं वजाई। श्राज श्रापने मेरे नृत्य को श्रनन्त गौरव प्रदान किया है। समुद्रगुप्त—यह कला की साधना में ग्रावश्यक है। श्रन्छा दूसरा श्रपराध कौनसा है?

रत्नप्रभा—सम्राट् ! श्राज श्रापने इतनी मधुर बीखा वजाई कि संगीत की इस दिव्य श्रनुभूति में मेरे हृदय का समस्त दीप दूर हो गया श्रीर श्राज में श्रपना श्रपराप स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूँ। समुद्रगुप्त — में उत्मुक हूँ नुनने के लिए, रत्नप्रभा।

स्योकार की । -समुद्रगुष्त---(जत्सुकता से) किससे ?

रत्नप्रभा-सम्राट् ! राजनतंत्री होकर मेंने एक श्रन्य व्यक्ति से भेंट

पवलकीर्ति—(बीध्रता से) मुभते मझाट् ! मिहल के राजदूत पवलकीर्ति से । समुद्रगुप्त-तो इसमें कोई हानि नहीं। तुम तो हमारे राज्य के श्रतिथि हो। तुमसे भेंट स्थीकार करने में कोई हानि नहीं है।

रत्नप्रभा—फिर भी नम्राट् प्रन्य राज्य के व्यक्ति की भेंट स्वीकार करने की प्राक्ता मेरी पातमा मुक्ते नहीं देती। इनकी यह भेंट प्राप हैं। के चरणों में समपित करती हैं; श्रीर यह यह है।

(सम्राट् के चरणों में दो होरक राज्य समर्पित करती है) मणिभद्र—(होरक राज्यों को देखकर प्रसन्नता से) वे हीरक सन्द

मोणभद्र— (होरेन राण्डा का दराकर प्रसप्तता स) व हार्य पर यही हैं, यही हैं, (उद्देग से) महाराज प्रायश्चित नहीं करेंगे, महाराज प्रायश्चित नहीं करेंगे।

समुद्रगुप्त—(रत्नों को हाथ में नेकर) टहरो, ठहरो मणिम्ह, प्रसन्नता से पागल मत बनो। (धवलकीर्ति से) राजदूत धवलकीर्ति, क्या यह सत्य है?

घवलकोति—(लज्जा से सिर नीचा फरके मौन है)

समुद्रगुप्त-बोलो राजदूत, क्या तुम इसी आचरमा ने राजदूतत्व का निर्वाह करते हो ?

धवलकीति— सम्राट् ! में नविजत हैं।

समुद्रगुप्त-राजदूत, मुक्ते तुम पर पहले ही कुछ शंका हो रही सी

थे, राजमिहिपी कुमारिला के कण्ठहार के रत्नों की पवित्रता का सन्दे-जतला कर तुम राज्याधिकार को लांछित करना चाहते थे, तुम इसीिला जिल्पियों पर प्रसन्न हुए थे कि वे रत्न-खण्डों के लिए श्रिधिक जिज्ञास न करें, तुम रत्नप्रभा के नृत्य के पूर्व ही चले जाना चाहते थे जिसे तुम रत्नप्रभा के समक्ष दोषी होने से बच सकी। मैंने इसीिलए आ

मणिभद्र की ग्रात्म-हत्या के विचार पर तुम मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे

वीणा बजाई जिससे संगीत के वातावरण में अपराधी विद्धल हो जाम श्रीर श्रपना रहस्य खोल दे। नहीं तो मर्यादा के संकट में संगीत की क्या-श्रावश्यकता ? तुम मेरे ही राज्य में श्राकर विप का बीज बोना चाहते

हो ? बोलो, तुम्हें क्या दण्ड दिया जाय ?

धवलकीति—सम्राट् ! जो चाहें मुक्ते दण्ड दें । समुद्रगुष्त—तुम जानते हो धवलकीति, राजदूत दण्डित नहीं होता, इसीलिए तुम निर्मीकता से कहते हो, सम्राट् जो चाहें मुफे दण्ड दें। किन्तु तुम यह ठीक तरह से समभते हो कि समुद्रगुप्त पराक्रमाङ्क न्याय को देवता मान कर पूजता है और अन्याय को देत्य समभ कर उसका विनाश करता है। मैं अपने महासामन्त सिरिमेघवन्न से तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था कराऊँगा। तुमने राजमहिंगी कुमारिला के रत्न-खण्डों को स्वयं कस्तुपित किया है, मिणभद्र के प्राण् संकट में डाले हैं, राजनर्तकी को मर्यादा के पथ से विचलित करने का प्रयत्न किया है। दण्ड तुम्हें प्रकर मुन्ती होगा।

धवलकीति—सम्राट् ! मुक्ते अधिक लिज्जित न कीजिए । मैं स्वयं परिताप की अग्नि में जल रहा हूँ ।

समुद्रगुष्त—उस परिताप की श्रानि के प्रकाश में क्या यह स्पष्ट कर सकते हो कि ये रत्न खण्ड तुमने मणिभद्र की संरक्षा से किस प्रकार मुक्त किये ?

घवलकीति—अपने श्रन्तिम समय में में श्रात्य गापण नहीं करूँगा, समाट्! श्रापको श्रभी जात हुआ है कि शिल्पियों की कार्य-समाप्ति के पूर्व ही शिल्पियों को मैंने प्रसप्त हो निश्चित पारिश्रमिक दे दिया श्रीर वह इसलिए कि जब मेरे सामने मिंगाभद्र उन्हें देने के लिए स्वर्ण-मुद्राएँ । गिने तो में मणिभद्र का घ्यान सिहल की मुद्राशों की विशेषता की श्रीर वार-वार श्राक्षित करूँ। ऐसे ही किसी श्रवसर पर में वे रत्न-लण्ड एप्टि बचा कर मंजूपा में से निकाल लूँ। श्रपने कार्य की सरस्ता के कारण ही मैंने उन रत्नों को भांदागार के भीतरी प्रकोष्ठ में न रणने का परामर्श मणिभद्र को दिया।

समुद्रगुप्त-पिर रत्नप्रमा को तुमने किस विचार ने ये रत्न मेंट किये ?

पयलकीति—मैंने उससे नृत्य करने की प्रार्थना की किन्तु उसने कहा कि मैं सम्राह् की धाजा के बिना किसी दूसरे के समक्ष नृत्य नहीं करोंगी। मैंने बार-बार प्रार्थना की धौर उसकी मुन्दरता के ध्रनुरूप ही हिरन-प्राण्डों की भेंट की। उसने मौन होकर वे रत्न-खण्ड ले निये; न जाने क्या गोजकर धौर क्या समक्ष कर।

समुद्रगुप्त-पित रत्नप्रभा ने तुम्हारे सामने नृत्य किया ? घवनकीर्ति-नहीं सम्राट्, उसने फिर भी अस्वीकार किया । समुद्रगुप्त-रत्नप्रभा, में तुमने प्रसम्र हूँ । अब स्वीकार करो भ्रपना यह पुरस्कार । (हाथ में रखी हुई माला देते हैं।)

रत्तप्रभा —(माला लेकर सिर भुकाकर) मछाट्, श्रापकी प्रसन्नता में ही मेरे पुरस्कृत होने की नार्धकता है।

समुद्रगुष्त—भेरे साम्राज्य में इस प्रकार का घन्याय नहीं हो सकता, इसी बात में में मूनी हूँ ।

धवलकोति-सम्राट् ! मुक्ते ग्रीर किसी प्रश्न का उत्तर देना है ?

समुद्रगुप्त—नहीं, ग्रंथ केवन महासामन्त को सूचना देनी है कि राजमिहिषी के रतन-पण्डों को भगवाम बुद्धदेव की श्रद्धा में समर्पित न कर राजनतंकी को भेंट करने के श्रपराध में जो दण्ड-व्ययस्था हो उसका प्रयन्य करें।

घवलकीति—सम्राट्! याप उन्हें मूचना देने का कष्ट न उठाएँ।
मैने मिएभद्र के साथ विश्वासघात किया, राजमहिंथी के हीरक-खण्डों
को कलुपित किया, राजनतंकी को मर्यादा से विचलित करने की चेप्टा
, की श्रीर सम्राट्, श्रापके श्रायित्वत करने का श्रवसर उपस्थित किया,
इन-सवका अस्मिलित वण्ड बहुत भ्रमानक है। यदि मुभे सी बार प्राणदण्ड दिया जाय, तब भी वह पर्याप्त-नहीं है। मैं श्रपनी श्रोर से सबसे
वड़ा वण्ड स्थयं श्रपने को दे रहा हूँ श्रीर वह है श्रात्म-हत्या।

(फटार श्रपने हृदय में मार लेता है श्रीर सम्राट के समक्ष ही गिर पड़ता है।) (मिर्शिभद्र श्रीर राजनर्तकी के मुख से आइचर्य श्रीर दुःख की घ्वनि।)

समुद्रगुप्त—स्वयं दण्डित होने से श्रव तुम श्रपराघों से मुक्त हुए धवलकीति, तुमने श्रपने नाम को धवल ही रहने दिया।

घवलकीति—(अस्फुट स्वरों में) मैं "राजमहिषी को "भ्रपना मुख "नही दिखला सकता था "सम्राट् मेरी "कला की "उपासना "मसत्य है। मुफे "जान्ति से मरने "हैं। श्रापका संगीत "। समुद्रगुप्त — हौ, घवलकीति । मैं तुम्हें संगीत सुनाऊँगा । राजनतंकी, तुम नृत्य करो, सच्चे अपराधी की मृत्य को मंगलमय बनायो । मणिभद्र के स्थान पर धवलकीति को विजय-विदा दो । मैं भी वीणावादन करूँगा । विलिपयों को मुक्त कर यहाँ आने का निमन्त्रण दो । आज धवलकीति अपनी मृत्यु के समय मेरा मंगलवाद्य मुने । राजनतंकी, नृत्य शीव्र प्रारम्भ हो ।

(राजनतंकी नृत्य करने के लिए प्रस्तुत होती है, श्रौर सम्त्राट समुद्रगुप्त श्रपने हाथ में वीणा लेकर स्वर छेड़ते हैं। परवा गिरता है)

## लच्मीनारायण मिश्र

जहां प्रसाद जी ने प्रपान नाटकों से भारतीय प्रावर्गी का प्रतिपादन किया है यहां मिश्र जी ने जिन्दी नाटकों तथा एकोरियों को नई दिशा प्रदान की है; नई भार-भूमि दी है। हिन्दी के नाटककारों में पादचान्य की नेतना तथा भारत की कमस्याओं की घोर नदमें पहले मिश्र जी की ध्यान गया है। मिश्र जी की जिलारमारा सम्भन्ते या उसे स्पष्ट करने के लिए हमें बहुत कुछ एघर-उसर कोजना नहीं है स्थोकि उन्होंने प्रपान नाटकों की भूमिका के रूप में धपने विचार स्पष्ट कर दिये हैं। साध-ही, प्रपान विचारों तथा मान्यताबी को उसी रूप में उतार्न का प्रयत्न भी मिश्र जी ने किया है।

हिन्दी में समस्यातमक नाटकों था जन्म ही मिश्र जी के नाटकों के साय होता है। यों तो बहुन में घालोचक इस मत के है कि समस्याएँ घाववत है और रहेंगी। माहित्यकार उसमें अलग नहीं रह सकता क्योंकि समान का नहन एवं सम्भाव्य चित्र ही तो माहित्य कहा जाता है, पर हिन्दी नाटक-माहित्य में मिश्र जी के नाटकों से ही समस्यात्मक नाटकों का प्रारम्भ हुआ है—में इसे मानता हैं। समस्ताएँ घादवत है, पर यथार्थवादी भूमि पर उनकी और देखना भी तो अपना मूल्य रसता है। बादनों के लिए यथार्थगत सत्य की हत्या करना, उसको उपेक्षा करना सम्भवतः किसी भी ईमानदार साहित्यकार के लिए अपेक्षित नहीं है। मिश्र जी ने उसी का आधार लिया है और ईमानदारी के साय समाज की विभीषिका प्रस्तुत करने में सफल हुए है।

मिश्र जी ने यथार्थं को ही अपना ध्वेय बनाया है और इमीलिए उसे प्रतिपादित करने की नाट्यकला को हम यथार्थों मुख्ये कहेंगे, पर यथार्थं के लिए आदर्शों तथा जीवनगत सत्यमयी परम्पराओं की उपेक्षा कराना मिश्र जी का उद्देश कभी भी नहीं रहा है। उनके पात्र भावना-

Proper ,

प्रधान, मानवतावादी, धादशीं न्युखी तथा परम्पराधों को धागे बढ़ाने में भी सहायक होते देखे जाते हैं। मिश्र जी के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है कि समस्या को धागे रखकर उपदेशक न बनना वरन् सजग साहित्यकार की भौति उसका क्रियात्मक उत्पादन प्रस्तुत करना। सम्भवतः इसी एक सत्य ने मिश्र जी को हिन्दी नाट्य-साहित्य में ध्रपना स्थान बना सकने में सफल बना दिया है।

जहाँ तक मिश्र जी के नाटकों की कलात्मकता का प्रश्न है, उसके विषय में स्पष्ट कहा जा सकता है कि स्वाभाविकता के पुजारी मिश्र जी को इसके लिए कहीं वाहर नहीं जाना पढ़ा है। संकलनत्रय का सफल प्रयोग स्वाभाविकता को सबल बनाने में सहायक हुन्ना है। साय ही, पूरे नाटकों में, एकांकी के श्रमुख्य तीन श्रंकों का निर्माण कर मिश्र जी ने एक नया प्रयोग किया है। हो सकता है कि हिन्दी के समसामयिक श्रालीनकों को ये यथा-तथ्य चित्र श्रहचिकर लगे हों पर श्राज उन्हें पढ़ कर हम समाज की विभीषिका का नग्न चित्र देख सकते हैं—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

मनीविज्ञान मिश्र जी के नाटकों का प्राण है। हर पात्र, जहाँ जिस भी अवस्था में है, उसी के अनुकूल उसके स्वर निकलते है। पाटक अनायाम ही पात्र के साथ हो लेता है और दर्शक, अपने संगम को सोकर, पात्र के साथ सहानुभूति अकट करते हुए श्रांकों में श्रांमू भर लेता है। इसी में नाटककार की सफलता है कि वह पात्र, पाठक श्रीर दर्शक—सभी को समतल भाव-भूमि पर लाकर पड़ा कर देता है।

मिश्र जी बुद्धिवादी है और 'मुक्ति का रहस्य' कृति की भूमिका के रूप में उन्होंने स्पष्ट भी कर दिया है और यह वताया है कि उनका बुद्धिवाद पारचात्य की देन नहीं वरज् भारतीय उपनिपदों की देन है। उनके विचारों में वे लोग भूल करते है जो बुद्धिवादी विचारधारा को परिभम की देन मानते आये है। मिश्र जी के इस उपनिपद्गत बुद्धिवाद के परिणामस्वरूप उनका नाट्य-माहित्य विवेक और तर्क का माहित्य 'दन गया है। ऐसे स्वलों पर अन्ध-विष्वाम और रुद्धियों या परम्पराओं का गुला मंगर्य उनकी भाव-भूमि वन गया है। सम्भवतः इसी कारण

जीवन को वड़ी ही गम्भीरता से सामने रखने का प्रयास मिश्र जी न किया है जिसकी अन्तरात्मा के रूप में उन्होंने सदाचार, धर्म, विवेक और चिरन्तन सत्यों को स्वीकार किया है।

मिश्र जी के एकांकियों को यदि हम सामूहिक रूप में देखें तो हमें उन पर दो प्रकार के प्रभाव दिखाई पड़ते हैं जिनके परिणामस्वरूप नाटकों का ग्रन्तरंग या विहरंग निखर पाया है। न तो इनके नाटकों में किसी प्रकार की कृत्रिमता दिखायी पड़ती है ग्रोर न चरित्र-निर्माण में कहीं भी स्वामाविकता की उपेक्षा। कलात्मक कृत्रिमता की उपेक्षा के फलस्वरूप भाषा ग्रीर कथानक का सतत्, सहज एवं सम्भाव्य विकास होता रहा है ग्रीर शास्त्रीयता एवं रूड-मान्यताग्रों से दूर ग्राकर, हिन्दी नाटक साहित्य को एक नया मार्ग देने का कार्य मिश्र जी ने किया है। चित्र-निर्माण के लिए मनोविज्ञान तथा भारतीय जीवन के अनुरूप वातावरण का निर्माण उनके पात्रों को सजीव वनाने में सहायक रहा है। संलेप में कहा जा सकता है कि मिश्र जी के नाटकों में कला-शास्त्रीयता ग्रीर नवीन मान्यताग्रों का सहज गठवन्यन है जिसके परिणामस्वरूप उनके नाटकों में ग्राज के मानव का जीवन सजीव हो उठा है।

जहाँ तक भिथ जी के नाटकों में प्रतिपादित समस्याग्नों की बात है, उन्होंने ग्रपने नाटकों की भाव-भूमि राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याग्नों को बनाया है। साथ ही, इनके लिए व्यक्तिगत समस्याग्नों की उपेक्षा नहीं हो सकी है। संक्षेप में, स्पष्ट कहा जा सकता है कि मिश्र जी ने सामाजिक विभीषिका के नर-पिशाच की ग्रोर स्पष्ट संकेत किया है जिसकी सीमाएँ व्यक्ति के उन्मुक्त प्रेम से लेकर सामाजिक ग्रव्याव हारिकता तक सभी कुछ श्रा जाता है। मिश्र जी द्वारा प्रतिपादित सेक्स की समस्या को सामने रखते हुए कुछ श्रालोचकों ने ग्रपना विचार प्रकट किया है कि इस भावना पर मूलतः पारचात्य की छाप है पर मिश्र ज इसे फायड की देन न मानकर नात्स्यायन की देन मानते हैं।

मिश्र जी के एकांकी नाटकों में ग्रज्ञोक वन, प्रलय के पंख पर ग्रीर मनु तथा श्रन्य एकांकी संग्रह आदि उल्लेखनीय हैं।

## एक दिन

[ देहात के किसी गांव में खपरैल का मकान। माटी की दीवारें चिकनी कर चूने से लीपो गयी हैं। आगे की श्रोर काठ के खम्भों पर बना क्रोसरा । लम्भे क्रुक्ते पड़ गये हैं, उनके रंग से ही उनकी श्रापु फूट रही है। उनका होरे अब इतना सुख गया है कि जगह-जगह टेढ़ी-मेढ़ी दरारें पड़ गयी हैं। जाति का गुरा श्रीर वल श्रीर कहीं माना जाय या नहीं, इन खम्भों की लकड़ी में तो ठोस है। ये शीशम के खम्भे अपनी टेक में पत्थर का कान काट रहे हैं। भीतर जाने का पुराना हार दाई ओर बाहर से पड़ता है। इससे हटकर तीन नये किवाड़ इस समय में हैं जो अपनी बनावट, लफड़ी श्रीर पल्लों से, इस नये यूग की बस यही इतनी छाप इस घर पर लगा रहे हैं। इस नये युग का सब काम जब यह पुराना घर न दे सका, तब बैठक के लिए यह एक कमरा बना लिया गया । भीतर की इतनी जगह ले ली गयी । इस कमरे में एक ओर पलंग पर विद्यावन विद्या है, नीचे कच्ची घरती पर नयी दरी पड़ी है। दूसरी ओर देहाती बढ़ई की बनाई भोंडी मेज श्रीर बॅत की तीन कुर्तियों ग्रीर दीवालों पर फुछ नये-पुराने सस्ते चित्र हैं। ऊपर बांस के फट्टों में कील लगाकर रंगीन चांदनी लगी है। मेज के पीछे एक फियाड़ दालान में होकर जाने का है।

भीतर की ओर से राजनाय का प्रवेश । ऊँचा पुष्ट घरोर । ललाट पर रेखाएँ । बाल गंगा-जमुनी, भवें तनी और लम्बी, धांखों में लाल डोरे । सांस कुछ बड़ी चाल में हैं । एक कुर्सी खींचकर बीच बाले द्वार के सामने घम्म से बैठ जाते हैं । तीन बार हथेली से लिलाट पीट लेते हैं, फिर हाय खट्ट से कुर्सी की बांह पर गिर पड़ता है । ]

राजनाय-पद्मनिमद्रमेण..... चक्र की इस गति को भैने रोकना

वाहा । यह उसी का दण्ड है । बड़े बने रहने के मोह में मैंने पूर्वजों की मर्यादा मिटा थी । श्रीबी के बेग में एक-एक पता, हर टाल-टहनी के साथ या जाना मैंने नहीं चाहा श्रीर धव दूंठ हैं । मोहन ...मोहन ...।

भोहन-जी श्राया (उसी हार से प्रवेदा । प्रायः वीस ययं भी श्रवस्था का युवक । रेदामी कमीज और उजनी घोती । आंकें घरती की ओर, मुंह पर भय की छाया) जो इनमें घोड़ा.....।

राजनाय—कभी नहीं, जो हो गया.....जन्म भर उसी में जलता रहूँगा। पाँच पीड़ो की बात जानता हूँ। श्रस्मी के नींचे कोई मरा नहीं। मेरे श्रभी पनपन हैं। उनसा सुगी नहीं रहा, किर भी श्रभी पन्द्रह बरस तो चलेंगे ही।

मोहन-जरा नीचियं तो पिताजी, कितनी वड़ी समस्या ते पिट छूटेगा ? भूठी मर्यादा । अपनी चड़की का मुख आप नही देखते ।

राजनाथ—गोली मार दो तुम मुक्ते। उस सुस से बड़ा मुख मिलेगा मुक्ते इसमें। वंश की मर्यादा तुम्हारे तिए भूठी हो गयो, जिसे बचाने में सब मुख चला गया? बाप-दादों का घर भी चला गया। जिस घर में पैदा हुआ, गेला-कूदा, बड़ा हुआ.....जिसमें तुम्हारी मौं आयो, तुम भी जिसमें जन्मे थे, उसके नीलाम की हुग्गी से प्राण उतना नहीं विधा था जितना थाज विधा है।

मोहन—सब कही यह हो रहा है...बड़े से बढ़े घरों में...बिना कन्या देते विवाह श्रव बढ़े घरों में नहीं होता।

राजनाय—सो तो तुम कर चुके । विष की एक घूंट तो मैं पी गया, दूसरी न पिऊँगा।

मोहन—में नहीं समक्ता, ग्रव इम ग्रुग में इसमें बुराई क्या है, वर ग्रपनी रुचि की कन्या चाहता ही है, फिर भी ऐसा वर जो...।

राजनाय—जो एम० ए० में पढ़ रहा है, बड़े बाप का वेटा है, जिसका बाप नामी बकील है, जो कभी भी हाईकोर्ट का जज हो सकता है, जिसकी कोठियाँ हैं, मोटरें है, हटो-बचो जिसके यहाँ लगा है। क्यों.....?

मोहन—हाँ, तो इसमें भूठ क्या है ? क्या उस परिवार में शीला मुखी न होगी ? कन्या के प्रति आपका जो कर्तव्य है उसे देखिये। लड़िक्यों का कभी यहाँ स्वयंवर होता था। यह भी इसी देश की मर्यादा है।

राजनाथ—इस देश की वया मर्यादा है, तुमसे न सीर्जूगा। उसे सीराने के लिए किसी विलायती प्रोफेसर के पास भी न जाऊँगा। वह तो जिस तरह भेरे पूर्वजों के रक्त के रूप में भेरे इस शरीर में है, उसी तरह संस्कार के रूप में भेरे मन में है।

मोहन - श्रच्छी बात । तो फिर श्राप जानें .....।

राजनाय—इस तरह घमका कर नहीं वेटा । भूठा भय श्रीर भूठा इतिहास......इस तुम्हारे नये युग में वस यही दो वातें हैं।

मोहन-वया कहते हैं ?

राजनाथ—लड़िकयों का स्वयंवर यहाँ होता था पर चुनता कौन था? कन्या या घर? एक कन्या के लिए सैंकड़ों युवक आते थे। रूप, गुण श्रीर पीरप में जो बड़ा होता उसे कन्या चुनती थी। जयमाला जिसके गले में पड़ती वह अपने भाग्य से फूल उठता। उस युग में कन्या की यह मर्यादा थी, आज क्या है? स्त्री जाति जितने नीचे पिछले दस वपों में गयी है उतनी पहिले कभी नहीं गयी।

मोहन-तो यह भूठा इतिहास है।

राजनाथ—यही, श्रीर तुम श्रव कहते हो...मैं जानूं श्रीर मेरा गाम जाने । यह भय तुम दिसाते हो । जैसे मेरी लड़की के भाग्य में कुछ है ही नहीं । तुम उसके लिए भाग्य गढ़ कर लाये हो । तुम्हारे साँचे का भाग्य या तो मैं मान लूँ श्रीर नहीं तो फिर मेरी लड़की दुःख उठायेगी ।

मोहन-भाष्य में नहीं मानता । परिस्थित सब कुछ करती है। निरंजन इस भयानक गर्मी में नैनीताल होता। इस गाँव की घूल में स्टेजन से तीन मील पैदल न चला होता।

राजनाय—(हँसकर) तुम्हें उसका कृतज्ञ होना चाहिये। यह तुम्हारे रिए तीन मीन पैदन का गया। नैनीताल का निवासी इस ठेठ देहात में। इन्हीं देहातों में वह धन जाता है जिसे निरंजन का बाप नैनीतात में सर्च करता है। राम, तक्ष्मण श्रीर जानकी की कितना पैदन चनना पड़ा था मोहन ? नंगे पैर गीतम कहां-कही धूम श्राये थे ?

मोहन - प्राप तो बस पही आदर्श के मपने देखते हैं।

राजनाथ—धिना इन सपनों के मनुष्य दिन्द हो उठेगा। इन्हीं से हम धनी हैं मोहन। इतिहास पढ़ते हो तुम एम० ए० में भीर वह निरंजन भी। निकान दो इतिहास से इन नपनों को, देखों वहीं फिर क्या बचता है? फिर भी इतिहास का एक ही पाठ है।

मोहन-दस समय प्रसङ्ग क्या है और श्राप...

राजनाय—रस नमय का प्रसंग भी इतिहास से खुड़ा है-मेरे, मेरे पूर्वजों के... निरंजन ग्रीर उसके पूर्वजों के इतिहास से यह प्रसन्न भी खुड़ा है। जो बहुत बढ़े बन जाते हैं, प्रशृति उन्हें दिकने नहीं देती। मेरी जो दशा ग्राज सात पीड़ी के बाद है, निरंजन की दूसरी ही पीड़ी में होगी। यही इस जगत् का चक्र है। ऊपर का बिन्दु नीचे ग्रीर नीचे का बिन्दु ऊपर। (दोनों हाथों को पुसाकर तर्जनी से परिध बनाते हैं)

मोहन-तो दस समय में जाऊँ, श्रापका चित्त...

राजनाथ—ठिकाने नहीं है। पुत्र कह रहा है, पिता का चिर ठिकाने नहीं है। तुम्हारे विचार मुभसे नहीं मिलते, इसलिए में पागव हैं। तुम्हारे शब्दों में तुम्हारे इस युग और इस देश की नयी पीड़ी वोल रही है, जिसका विश्वास अब अपनी जड़ों में नहीं है। (उसकी ओर एकटक देख कर)...नहीं समभ रहे हो?

मोहन —क्षमा करें, यदि मुक्तसे...इधर सालों से ग्रापको चिन्तित ग्रीर व्यग्र देखता रहा।

राजनाथ — उसके लिए इतना सीचा, इतना सस्ता उपाय तुमने खोज लिया। ग्राज के पत्रों, पुस्तकों में ऐसे ग्रोछे काम बहुत मिलते हैं। वस एक ही व्यापार चल रहा है...कुमारियों ग्रोर उनके प्रेमियों की प्रेम-लीला। यूरोप ग्रीर ग्रमेरिका में भी इतना मद नहीं जिसमें यह देश हुव रहा है।

किसी ठोस कार्य के लिए नहीं। यदि यह हो जाय तो इसका मुख श्रापको न होगा ? जीला रानी बनकर न रहेगी ?

राजनाय—यही मुफे डर है। रानी बनाने के मोह में कहीं तुम उसे बोर न दो। जहाँ श्रारम्भ ही श्रशुद्ध है वहां श्रन्त क्या शुद्ध होगा? श्रीर इन दिनों में निरंजन ने उसे कई बार देखा। तुम्हारे साथ उसने उसे भी भोजन कराया, जलपान कराया। बिना संकोच के जैसे वह नुम्हारे सामने रही है वैसे ही उसके सामने भी रही।

मोहन—यही तो नहीं रहा। कल दिन में जब वह सोकर उठा, कई बार वह उसका नाम लेकर बुलाता रहा। एक गिलास पानी के लिए वह उसके पास नहीं गयी। क्या कहेंगे आप, यह उसका अपमान नहीं हुआ ? वह तो रात ही जाने की तैयार था। मैंने बड़े आपह से रोका और कहा कि बच्चा है, जाने दो।

राजनाथ—श्रीर श्रव वह उससे अकेले में वात कर निर्णय करेगा। उसकी परीक्षा लेगा कि वह उसके योग्य है या नहीं श्रीर तब उसे स्वीकार कर तुम्हें कृतार्थ करेगा या कह देगा 'नहीं', जी मुक्ते पसन्द नहीं, नौकर से पानी न माँग कर उसने तुम्हारी वहिन से माँगा।

मोहन — ऐसी इच्छा उसकी स्वाभाविक थी। समय बदल गया। मैंने कहा भी, उसे कोई लड़कियों का स्कूल ही घरा दें। साप रामायण, महाभारत पढ़ाते रहे, उसका परलोक बनाने के लिए। यह लोक बने या न बने। उसके सामने जाने में उसे लाज लगती है...एक पिलाम पानी या दो बीड़े पान लेकर। जैसे उसका जन्म इन बीमबी गदी में नहीं, गोनहीं या पन्द्रहवीं में हुआ हो।

राजनाय — हूँ, तो इस पुग की लड़की में श्रातम-समान नहीं है। यह उस पुगा के चारों श्रीर भांबर देती है जो उसे देखकर, वातें कर, बड़ी छुपा से अपनी स्त्री बनाना चाहना है। नीच ! एक शस्त्र भी मेरी नड़की के विरुद्ध कहा तो जीभ खींच चूंगा। उसके शरीर में गैरा, मेरी उस मात पीड़ी का रक्त है जो सम्मान के लिए मर मिटी। तुम्हारे ऐसे पुत्र में यह पुत्री भली जिसने कम से कम अपना, अपने मां-वाप का नम्मान

तो रक्ता। रामायण श्रीर महाभारत पढ़कर जो वह ग्रसम्य या श्रिष्ढ़ है, उसका पता तब चलेगा जब किसी दिन तुमसे वह वातें करेगी। श्रीर ठीक है, करेगी वह एकान्त में वातें तुम्हारे इस देवता से...मन श्रीर बुद्धि के नहीं, घन के देवता से।

मोहन — नहीं, जाने दीजिये। मैं उसे अभी स्टेशन पहुँचा आता हूँ।
राजनाथ — अभी नहीं। वैठ जाओ, वह कुर्सी लेकर। तुमने पत्र में
लिखा था, तुम्हारे एक मित्र निरंजन कुमार देहात देखना चाहते हैं।
मैंने लिख दिया, लिवा लाओ। जिस घर के अतिथि किसी समय नवाव
आसफुदौला रह चुके थे, कुँवरसिंह और अमरसिंह सत्तावन वाले
विद्रोह में जहाँ तीन दिन अपने सिपाहियों के साथ पढ़े रहे, इसे विगड़े
समय में भी तुम्हारे एक मित्र का सम्मान वह कर सकता है। मुभे
क्या पता था कि तुम स्वार्थ की इस निचली तह में उतर जाओंगे।
विवाह के पहले तुम्हारी वहन को कोई उस आंख से देखे और तुम उसे
फोड़ न दो।

मोहन-पर उसने किस ऐसी ग्रांख से देखा कि .....।

राजनाय—जो काम वह किसी भी नौकर से ले सकता था वह उसने तुम्हारी वहन से लेना चाहा...केवल इसलिए कि श्रकेले में वह भर श्रांख उसे देखे, दो वार्ते पूछे...इसके वाद वह उससे कहता पैर दवाने के लिए...(क्रीध से कांपते हैं।)

मोहन—राम, राम ! कितना ग्रनथं कर रहे हैं ग्राप ? शीला के भाग्य में जो होगा, होगा । ग्रव तो इसी क्षण निरंजन यहाँ से चला

जाय।

राजनाथ—इस घर ने बड़े चढ़ाव-उतार देखे मोहन, पर यह कभी

नहीं देखा। यह घरती फट जाती ग्रीर इसमें में समा जाता। यही था, १

तो पहले तुमने मुझसे राय ले ली होती।

मोहन-मैं जानता था लड़की दिखाने को श्राप तैयार न होते।

राजनाय—इस तरह नहीं। श्री चौघरी से जव श्रीर वार्ते तय हो ू जातीं, मैं उन्हें लड़की दिखा देता पर निरंजन को कभी नहीं। विवाह के पहले जो लड़का लड़की को स्वयं देखना चाहता है वह श्रसम्य है।
पत्तन्द करने का श्रविकार वह श्रपना मानता है, कन्या का नहीं।
तुम जितना समभते हो में उतना जड़ नहीं हूँ। प्रगति रोकने में नहीं
जाता, वस इतना जान लो, प्रगति श्रन्थों की नहीं श्रौंखवालों की
होती है।

मोहन—सामन्त विचारधारा श्रभी श्रापकी नहीं छूटी है। हर बात में श्राप गर्यादा श्रीर श्रादर्श डाल देते हैं, यहाँ तक कि श्रपनी लड़की का मुख भी श्राप नहीं देखते।

राजनाय—तोते की रट...मुख, मुख, चुख...जैसे तुम्हारे इस काम से जसका मुख तय हो जायगा। उसकी होनी यया है....भगवान् उसे मुख न देना चाहें तो फिर सोने का श्रम्बर भी घूल हो जायेगा। मैं सामन्त विचारवारा में पड़ा हूँ श्रीर तुम घन के मोह में। घन के सामने तुम्हारे लिए वहन का मान भी मिट रहा है। (कांप कर) कुछ नहीं, तुम यह कहो, तुमने कहा बया इस निरंजन से? कैसे तुम्हारी वातें यह मान गया? तुमने कहा होगा... प्रपनी वहन के लिए श्रपने साम ही उसे निमन्त्रित किया होगा?

मोहन-जी नहीं...हम दोनों में परस्पर परिचय श्रीर स्नेह वहा। होस्टल से श्रपनी कार पर वह मुक्ते बराबर श्रपनी गोठी पर ने जाता था। जहाँ इतनी सरलता होती है, घर-परिवार की बात चलती ही है। उसे यह तो पता हो गया था कि मेरे पूर्वज कुल ती वर्ष पहने राजा थे। श्राज हमारे दिन बुरे हैं।

राजनाय—यह तुमने कहा, जिसने इमसे ब्रच्छे दिन कभी देने नहीं। पर में जो सब देख चुना हूँ, कभी नहीं कहता कि मेरे दिन बुरे है, जिस युग की हम उपज ये जब वह चना गया तो उनकी उपज कब तक दिकती? राज्य मिट जाते हैं। बड़े में बड़े गीर और जानी किसी दिन गरते हैं, पर उनकी नी जसती रहती है। व्यक्ति और मनुष्यना का मान वह की है। तुमने अपने बुरे दिन की बात कहीं और वह दया में पिषल उटा। जहां किसी भी हम में दया की मांग है वहां व्यक्ति मर जाता है, जीता नहीं। शीना का पता उने कब नना?

मोहन—उसके पर में उसकी भी बहन है। उसकी आपु भी मीला की है। इसी वर्ष उसने इष्टर किया है। यह बराबर मुक्ते गुन कर बानें करनी है। उसनी भी, जीवरी माहब, उनके स्वयहार में बनायट मुक्ते कहीं नहीं देख पड़ी।

राजनाय—इसिन् कि घनी वे बाद पर हैं। पननी वाद में ने तुम्हें भी बहा रहे हैं। तिनी दिन यह बाद नियन जावनी और पीछे छोड़ जावनी कीचड़ कोर दलदन। जो तुम्हारे घर हुखा, उनके घर भी होगा। उनित्त किने देखों, घन में घलन कर देखों। पद, प्रतिका और प्रिवार ने घलन कर देखों। पद, प्रतिका और प्रविकार ने घलन कर देखों। उन मनुष्य को देखों जो तुम्हारे इस युग में जन्म ने रहा है, जो पन और घिषाहर में नहीं घपने गुणों ने धान बढ़ेगा। घपने घर की सामन्त भावना के विरोधी निरंजन के घन की चमक में ऑलों न मूंद ली। निरंजन घाने दादा जा नाम भी नहीं जानता।

मोहन-नयों ?

राजनाथ—नीकने की बात नहीं। श्रपने पिना को छोड़ कर, श्रपने . कुल की कोई बात बह नहीं जानता। इतिहास की बातें भीर जी कुछ बह जानता ही, श्रपने घर का इतिहास नहीं जानता।

मोहन—कभी श्रवसर न मिला होगा। कहें भी कीन उनसे ? वकील साहव पान बजे सबेरे बैटते हैं, दस बजे तक दम नहीं लेते। स्नान और भोजन में बस बीस मिनट...हाईकोर्ट और लीट कर फिर श्राघी रात तक। नामी वकील होना भी कम संकट नहीं है।

राजनाथ — अधिकार के लिए तुम्हारे पूर्वज लड़ते-मरते रहे। उन्हें अधिकार और प्रभुता के लिए जीना था। वकीलों और सेठों को घन के लिए जीना है। समाज का निर्माण तब अधिकार पर टिका था, आज घन पर टिका है। वकील साहब भी केवल अपने पिता का नाम जानते होंगे। उस घर का इतिहास जितना में जानता हूँ उससे अधिक ये भी नहीं जानते।

मोहन-तो श्रापका परिचय उनसे है ? श्राप तो मुस्करा रहे है ?

राजनाथ—(हँसकर) हाँ...श्रीर श्रव तुम सुन लो। रात निरंजन से वात करके में यह जान गया कि देवनन्दन चौधरी के शरीर में मेरा नमक है।

मोहन-या कह रहे हैं श्राप यह सव...?

राजनाय— मुफे याद पड़ रहा है। सात-श्राठ का रहा हूँगा उस ममय। रघुनन्दन चौधरी की छरहरी लम्बी देह, गिफित मूँछ, लम्बे काकुल, सिर पर केसरिया रंग की कली, श्रांखों में सुरमा श्रीर श्रीठ पर पान की जाली। श्रंग्रेज कलकटर दौरे में श्राया था। दो दिन गढ़ी में रहा। रघुनन्दन उन दिनों बाबू जी के मुंबी थे। रियासत का बहीखाता, हाकिमों की श्रायभगत, सब कुछ उनके हाथ में था। श्राठ बजे सबेरे बाबूजी के सामने हाथ जोड़ कर सिर भुकाते थे श्रीर फिर रात को भी श्राठ ही बजे, दिन भर के काम की बात उन्हें बताकर गढ़ी में पीछे की श्रीर श्रपनी जगह पर चले जाते थे।

मोहत- यकील साहव के कोई सम्बन्धी थे रघुनन्दन चीयरी ?

राजनाथ—उनके बाप थे !...बड़े हुँसोड़ श्रीर मौके की बात महने वाले ! श्रंग्रेज कलक्टर उनसे इतना प्रसन्न हुआ कि बाबू जी में कह वैठा, वह नौधरी को श्रपना पेशकार बनायेगा ! चौधरी हमें छोटना नहीं बाहते थे ! जाने के समय इतना रोये कि बाबूजी ने श्रपने श्रॅगोछे से उनके श्रांतू पोंछ कर कहा था...जब चाहना यहाँ आ जाना, यह घर तुम्हारा है ! चौधरी चले गये लेकिन उनकी स्थी श्रोर लड़का जो मुमसे गुछ छोटा था गड़ी ही में रहे ! कितने दिन, ठीक-ठीक नहीं कह सब्गा । देयनव्दन मेरे साथ शेलते थे । गड़ी के बाहर जंगल में एक दिन योगों वोड़ रहे थे, देवनव्दन गेरे धकते से गिर पड़े श्रीर यहाँ मींह के जार एक श्रंगुन सम्बी हड्डी धँस गयी । है यहाँ कोई उनके चोट या निशान ?

मोहन—( विस्मय में ) जी हाँ, है। मुक्ते बड़ी ग्लानि हो रही है। फह दीजिये, प्राप्तो मुक्ते क्षमा किया। नहीं तो इस दुःस से मैं मीमार पड़ जाकेंगा।

राजनाय—लड़की की तरह नहीं ... लड़के की तरह । तुम लोग घोड़ी श्रांच नहीं सह सकते । किस बात का दुःस है तुम्हें ? देवनन्दन चौधरी के श्रनुकूल इस समय भाग्य है । बड़े पेड़ गिरते हैं, लुड़क जाते हैं, उनकी जगह नये बढ़ते हैं । यही अस है । तुमने भगवान् के लिए कुछ भी नहीं छोड़ना चाहा, यही भूल हुई ।

मोहन-तव वया हमा ?

राजनाथ—रपुनन्दन चीपरी ने लड़के और रपी को युजा लिया।
अपने आप पेशकार से बढ़कर दिन्ही हुए। लड़का पहता गया और आज
नामी वकील है। कल हाएँकोर्ट का जज हो सकेगा। सब कुछ मिट
सकता है, पर संस्कार की जड़ें जस्दी नहीं उपड़तीं। बीला और
निरंजन के मंस्कार में अन्तर है। निरंजन के धन से वह मुखी हो सकेगी,
इसमें मुभे तो नन्देह है। तुम भाई हो और मैं वाप हूँ। उगमे इन
विषय की कोई बात सीधे पूछो तो नहीं बता सकेगी फिर भी अभी मैंने
जो उसे देखा वह किसी चिन्ता, किसी दुख में थी।

मोहन—इसका कारण मैं हैं। मैं कल भी उसे दो बात कह गया श्रीर श्राज तो यहाँ तक कहा कि यदि तुम उससे ढेंग से बात न करोगी तो मैं तुम्हारा मुंह न देखूँगा।

राजनाय—सगी वहन के साथ तुम चाहं जैसा व्यवहार करो, वस, इतना जान लो, उपन्यासों श्रीर कहानियों से संसार नहीं चलता। तुमने जो यह जाल विद्याया उसे श्रव तुम न समेट सकोगे। यह काम श्रव मुक्ते करना पड़ेगा। जो मैं नहीं चाहता वही करना होगा। मेरी वेटी इस घर में दु:सी न रहे, यह तो मैं कर सकता हूँ। मेरा विद्वास, मेरा स्नेह उसका वना रहे। पिता के घमं में मैं लोटा न वन्। जाशो, उमे भेज

मोहन—अभी कुछ नहीं विगड़ा है वाबूजी...निरंजन चला जाय, मेरी वहन किसी दूसरे घर जिसका इतिहास, संस्कार इस घर से मेल खाये।

दो । उसे समभाकर, समभुंगा तो निरंजन से भी मैं ही...

राजनाथ-सामन्त भावना में श्रव तुम श्रा रहे हो। जो मर गया

उसे जिलाने की चेप्टा अब पाप है। कुल और वंश के अभिमान को भूल जाओ और भूल जाओ कि निरंजन के पूर्वंज कभी तुम्हारे श्राधित थे। भाग्य कभी तुम्हारे साथ था, श्राज उनके साथ है। जाओ, भेज दो शीला की। उसका संयोग जिसके साथ होगा, लाख चेप्टा पर भी न एकेगा। में भाग्यवादी हूँ। इस अवस्था में इतने चढ़ाव-उतार के बाद कोई भी भाग्यवादी हो जाता है।

(मोहन का प्रस्थान। राजनाथ फुर्सी से उठकर पर्लंग पर पड़ रहते हैं ग्रीर तकिये में मुँह छिपा लेते हैं। शोला का प्रवेश। भारी आंख, पलक गिरती नहीं। सुन्दरता के अमृत में विपाद का दिव मिल गया है। उसके चलने की आहट नहीं होती। आंचल से आंखें पोंछती है।)

शीला — (भरे कंठ से) आ गयी मैं....वायूजी ! आप कौप रहे हैं! मैं मर गयी होती आप रोते तो नहीं? (तिकया हाय से खींच कर, उनकी छाती पर सिर रख कर सिसकने लगती है।)

राजनाथ—(भटके से उसे सँभाल कर वैठते हुए) वेटी के लिए वाप कब नहीं रोवा ? नहीं, देखो, सुनो भी। जानकी के लिए विदेह-जनक रोये थे। मैं रोवा तो कोई वात नहीं। न मानोगी, तुमसे कुछ पूछना है।

शीला — आग वया नहीं जानते मेरा ? आप से मेरा कुछ छिपा है, भैया नहीं जानते, मेरा मुँह नहीं देखेंगे।

रोजनाय— उसका मुँह मैं नहीं देखता, पिता का प्राण जो इस देश मैं न होता। फिर भी वह तुम्हें सुखी देखने के लिए...

शीला—मुखी देखने के लिए मुभे इतना बड़ा दुःख आप के जीते जी दे अपने घर के बड़े होंगे, इस घर की बड़ी मैं हूँ। आपके पास धन नहीं है पर क्या भाव भी नहीं हैं मेरे लिए ? किसी पेड़ के नीचे... भोंपड़ी में में सुखी रहूँगी। जानकी के चौदह वर्ष बन में बीत गये। मैं उपा हूँ ? जिसका संग हो उसका विश्वास श्रीर शादर मिल जाय, समें बड़ा धन मोने-चांदी में लिपटना नहीं है।

राजनाय—यह गुग भव नहीं रहा वेटी। इस देश में भव जानकी की महीं...स्वा कहूं ? किस की बात चलेगी ?...होगी बहु कोई विदेश

की नारी, पुरुष को घक्का देकर बढ़ने वाली। वैंक में उसकी लम्बी रकम होगी।

रकम होगी । ज्ञीला— उससे उसे पूरा मुख मिलता होगा । सचमुच पति की

श्रांस में श्रांस गड़ा कर वह देखती होगी ?

राजनाथ — इस युग में हम ग्रपना सब कुछ विदेशी श्रांखों से देख रहे हैं। स्वतन्त्रता का उत्सव हम मना रहे हैं अपने को भूलकर, श्रपने ' गुण श्रोर श्रपनी मान्यताश्रों को भूल कर। श्रागे चलने में जो पीछे घूम कर देखते नहीं थे, वही श्रव दूसरों के पीछे सरपट दौड़ रहे हैं।

स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र नारी को ग्रव सव कुछ फाड़ फेंकना है। जानकी उसके लिए वड़ी भोली ग्रौर धर्मभीरु हैं...उनमें बुद्धि की कमी

जानका उसका लए वड़ा भाला श्रीर धमभार है...उनम बुद्धि को कमा है, साहस की कमी है, व्यक्तित्व की कमी है। श्रीला—जी, वे भाषण न दे सकीं। (मुस्कराती है) दशरथ की

ललकार न सकीं। रामचन्द्र से न कह सकीं कि तुम श्रपने पिता के धर्म के लिए वन जा रहे हो, मेरे रूप श्रीर यौवन की श्रोर नहीं देखते। श्राज की नारी यही कहेगी। पर श्रापने मुक्ते इस युग की चकाचौंध में जाने भी नहीं दिया। मुक्ते तो जानकी के त्याग में ही उनका सबसे बड़ा

ग्रियकार देख पड़ा है। वह ग्रियकार ग्रव तक नहीं मिटा, कभी नहीं मिटेगा। ग्रकेली एक जानकी में इस देश की नारी-जाति लय हो चुकी है।

राजनाथ—तव तुम निरंजन से वार्ते कर सकती हो। वह जाहता है कि...(अपर देखने लगते हैं।)

शीला—कोई वात नहीं। जानकी रावण से वातें कर सकी थीं, फिर भी रावण का संयम इन, निरंजन, में होगा या नहीं। रावण इतना लोलुप नहीं था। वह अशोक वन में जानकी के निकट जब गया, अपने बचाव के लिए अपनी रानी को साध लेता गया, और उन्हें अकेले में वातें करनी हैं।

राजनाथ—देश के सभी पढ़े-लिखे लड़के इस समय निरंजन हैं, उनमें रावण का भी संयम नहीं है।

शीला—तो फिर इनके इस रोग की दवा यहाँ की लड़कियाँ करेंगी। हम सब को सीता बनगा पड़ेगा। तो कहाँ उनसे मुफे वार्ते करनी होंगी?

राजनाय-लेकिन क्रोव नहीं वेटी । तुम लाल हो गयीं ।

शीला—ग्राप के सामने। उनके सामने में न लाल हूँगी न पीली। संयग ग्रीर विचार न छूटेगा मुभसे...

राजनाय-सोच लो जो तुम धीर वनी रहो।

ं शीला—सोच लिया। श्रापको कोई भी श्रवसर मेरी चिन्ता, सन्देह का न मिलेगा। श्रपना सम्मान चाहती हूँ। मैं फिर उनके सम्मान को टेस न दुंगी।

(मोहन का प्रवेश । उद्धिग्न मुद्रा में कभी शीला को ख़ौर कभी राजनाय को देखता है।)

राजनाथ-पया है ? ऐसे घवड़ाये क्यों हो ?

मोहन— जा रहा हूँ... उसे स्टेशन पहुँचा दूँ। मैंने उसे यहाँ बुलाकर उसका श्रपमान किया। शीला उससे घृणा करती है। क्या... क्या... कह रहा है। कहें तो उसके पूर्वजों का धितहास उसे सुना दूँ।

शीला— घृणा भी एक तरह का सम्बन्ध है। मुक्ते इन देवता पर दया बा रही है, ये मुक्ते समभते वया हैं? वावूजी ! यह वेचारा मन भीर श्रात्मा का रोगी है। भविष्य के लिए कुछ नहीं छोड़ता। सब कुछ वर्तमान में दवा रहा है। सौ वर्ष जीने से श्रच्छा है इसके लिए एक दिन या बस एक धाण जीना। कुम्भकर्ण छः महीने में एक दिन खाता था श्रीर यह जीवन भर के लिए एक ही दिन खा लेना चाहता है।

राजनाय-(गम्भीर मुबा में) हुँसी मुभती है तुभी...

शीला—फूटयूठ में रो पड़ी। श्राप भी रोये। मनुष्य की विपत्ति पर ही हुँगी श्राती है श्रीर इससे बड़ी विपत्ति श्रीर कहाँ हम लोग देखेंगे ? (हुँसने लगती है)

राजनाय-हैं हैं...पागल हो रही है। ऐसे ही उससे बातें करेगी ?

मोहन---ध्रव यह उसके सामने क्या जायेगी...(क्रोघ ध्रौर क्लानि फी मुक्रा)

गौला—तो फिर वे देवता यहाँ से ऐसे ही रोगी चले जायेंगे ?... नियंग गरित्र को हुँसी नहीं आती...आपने एक बार कहा था बाबूजी ? राजनाथ—तीस करोड़ के इस देश में श्राज तीस भी हैं सने वाले नहीं हैं। इसका कारण केवल श्राधिक नहीं, नैतिक भी है। श्राधिक होता तो कम से कम मिल-मशीन वाने पूँजीपित श्रीर चोर-वाजार वाले तो हैं तते?...उनकी तिजोरियाँ भरी हैं, पर मन खाली हैं। चरित्र-वल श्रव हमारी घरती में नहीं है। जो पीड़ी श्रा रही है उसका नमूना निरंजन है, मोहन है। देखो इन्हें, खड़े-खड़े काँप रहे हैं जैसे श्रभी रो पड़ेंगे या गिर पड़ेंगे। यह नयी शिक्षा क्या हुई, चरित्र की वागडोर छोड़ वी गयी। मन के विकार श्रीर भावना की श्रांघी में सेमर की रुई सी हमारी यह पीड़ी उड़ी जा रही है।

मोहन-में जल रहा हूँ और श्राप मुक्त पर व्यंग कर रहे हैं ?

राजनाय—जो जलता है व्यंग उसी पर किया जाता है वेटा ? तुम क्यों जल रहे हो ? जीवन को फूलों की सेज तुमने क्यों मान लिया ? फूलों में भी काँटे होते हैं। विपरीत परिस्थित में जो न डिगे वही पुरुष है और तुम जानते हो, सब कुछ अनुकूल ही नहीं होता। निरंजन कभी तुम्हारा आवर्श था और अब तुम्हारी आँखों में वह इतना नीचे हैं। वोनों ही सूठ है। दोनों को मिला कर बराबर करी तब तुम्हें निरंजन मिलेगा। शीला, बुलाऊँ उसे यहाँ। उसे आधात तो न पहुँचाओगी?

शीला—मुभ पर कुछ भी सन्देह हो तो नही। मैं उन्हें घृणा नहीं करती। घृणा के लिए कुछ परिचय होना चाहिए। ग्राप जानते हैं, मेरा उनसे कुछ परिचय नहीं है।

राजनाथ—(उठकर) तव में उसे बुला लाऊँ। तुम यहाँ न रहना मोहन, जब वह ग्रा जाय।

मोहन—अव इसका फल कुछ नहीं। यह होना चाहिए था पहले, अवंवह जाने को तैयार है। कपड़े पहन चुका है।

राजनाथ—नदी की बाढ़ उत्तर जाती है। मन का वेग न उत्तरता तव तो मनुष्य अपने ही ताप से जल मरता और फिर तुम्हें वह जान गया। इस घर में मुक्ते और शीला को भी जान ले, यही ठीक होगा।

(प्रस्थान)

मोहन - तुम उससे अकेल में बील सकीगी ?

शीला—में उनसे डरती नहीं। वे वील सकेंगे मुकसे ? मुक्ते सन्देह तो इसी मा है। बाप के धन का वल, शिक्षा का वल, चरित्र भीर व्यक्ति का वल नहीं वनेगा ? देख लेना, उन्माद जो उनमें थ्रा गया है, पल भर में उड़ जायगा। वाबूजी से नहीं कहा, मुक्तसे तो कहे होते कि तुम्हारे मित्र यहाँ मेरे लिए शाब हैं।

मोहन—में क्या जानता था कि तुम ऐसी जिही हो। श्रीला—इसका उत्तर में उन्हें दूंगी। मेरा मुंह तुम श्रव तो देखोंगे ?

मोहन-पुक्ते लजाग्रो न शीला । तुममें मुक्तते वृद्धि ग्रधिक है । शीला-युद्धि स्त्री है श्रीर वल है पुरुष । युद्धि श्रीर वल के मेल में

भीता—बुद्धि स्त्री है श्रीर बन है पुरुष । बुद्धि श्रीर बन के मेल म स्थिति बनता है। लुक-छिप कर बुद्धि चनती है, बन को यह कना नहीं श्राती ।

मोहन-पया ? कैसे देख रही हो ? शीला, तुम्हारी तिवयत ठीक नहीं है। तव वह यहाँ नहीं श्रायेगा।

शीला - रको । मुक्ते उतके लिए तैयार होने दो ।

मोहन--- किसके लिए ?

शीला — तुम्हारे मित्र से बात करने के लिए। एक-एक सींस का बल मुक्ते बटोरना होगा। उनके सामने मेरी आंखें नीची न पड़ें। यही पाहते हैं वे। ग्रपना श्रीर मेरा श्रन्तर वे देख लें।

मोहन-नुम्हारे मुँह का रंग हर पल जो वदल रहा है। तुम मुभन्ने कुछ छिपा रही हो शीला।

शीला—मन की गति जो हर पल बदल रही है। मन की बात मुँह पर श्राती है। तुम्हारी बहन की श्राज परीक्षा है। परीक्षक है एक पुरुष जो तुम्हारा मित्र बनता है। कैसा मित्र है वह ? क्या स्नेह है स्मक्षा तुम्हारे लिए ? जब तुम्हारी बहन के लिए वह इतना निर्देश है ?

मोहन- में उसे यहां नहीं श्राने दूंगा । (उठता है)

शीला—(उसका हाथ पकड़ कर) में उसे इस बीग्य नहीं छोड़ूंगी

कि फिर वह किसी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करे। नहीं...तिनक नहीं, तुम न घवड़ाग्रो। मुभे स्वीकार कर वह तुम पर कृपा करता। ग्रव वह तुम्हारी कृपा चाहेगा कि तुम ग्रपनी वहन उसे दो। भैया, तुम उसकी एक वात न सुनना ग्रौर कह देना तुम ग्रयोग्य हो। चाहिए तो यह या कि तुक-छिप कर मैं उसे देखती (हँसकर) ग्रौर जब लुक-छिप कर मुभे देखना उसने चाहा तो फिर चाहे उसकी देह सोने के पतर में मड़ी हो, उसके भीतर वह पुरुष कहाँ है जिसकी ग्रोर मैं.... (नाक ग्रौर भोहें टेढ़ी पड़ती हैं)

मोहन--- लुक-छिप कर वह तुम्हें देखना चाहता था। नीच....

शीला—नीच नहीं निवंल । जिसकी पुरुप देह में स्त्री का मन है, जो प्रणय की भील मांगता फिरता है, अपने घर का सङ्कृट जानकर कि मेरे भाई मेरे सुल ग्रौर सुविधा के लिए, मुक्ते रानी बनाने के लिए अपने सम्मान का त्याग कर रहे हैं, जिससे बड़ा त्याग पुरुप के लिए कोई दूसरा होता नहीं, यही चाहती थी मैं कि यह संयोग बैठ जाय। वह मुक्ते खींचना चाहता था ग्रपनी चटक-मटक से, ग्रपने उतावलपन से, शिक्षा श्रौर धन के दम्भ से। किसी न किसी वहाने मैं बरावर उसके पास रहूँ, मुक्ते देखता रहे, मुक्तसे वातें करता रहे। मेरे भीतर उसके लिए कुछ छिपा न रहे, कुछ रहस्य न रहे। दो ही दिन में वह सब कुछ

मोहन - कुछ न कहो, ग्रव मैं सिर पीट लूंगा।

जान जाय, उसकी सारी भूख मिट जाय।

शीला — इतने सीघे हो भैया तुम ! तुम्हारे मित्र के हाथ में लेंसेट वरावर रहता है। वे सब कहीं वहुत गहरे ज्ञीर कर देखते हैं, वहाँ क्या है ? श्रीर तुम उनके ऊपर की चमक-दमक में यह नहीं देख सके कि भीतर कितना विष है। उनके सिर पीटने से नहीं वनेगा। हैंस सकी तो उनकी मूर्खता पर हँसो। पुरुष का गुण न धन है न रूप, न विद्या, कहाँ तक वह अपने को रोक पाता है, कितना संयम उसमें है ?

मोहन—य कैंसी आहट है ? आ रहे हैं तव वह....शीला, उसका अपमान न करना। तुम्हारे घर आया है कम से कम इतना...।

श्रीता—श्राधी बात कहते हो । कही, फिर मैं क्या कहूँगी ? श्रपमान . वह स्वयं श्रपना करते हैं । मैं जनका श्रपमान क्या कहूँगी । पुरुष जव स्त्री का शिकार करता है, सम्मानित नहीं रह जाता । फिर भी विश्वास करो, मैं श्रपने पर अंकुश रखूँगी ।

(निरंजन का प्रवेश । अवस्था प्रायः तेईस वर्ष । लम्बा छरहरा गोरा शरीर । नुकीली नाक, आंखों पर चश्मा । इस नये युग की वेश-भूषा । प्रभाव की मुद्रा ।)

निरंजन-गाड़ी का समय हो गया है, मोहन ।

ीला—इस समय श्राप नहीं जायेंगे। श्राइए ! वैठिए ।

निरंजन-जो, श्रापके वायूजी भी यही कह रहे हैं, लेकिन श्रव चला ही जाना ठीक है।

शीला—वंठिये भी, चले जाने वाले को कव किसने रोका है? निरंजन—ग्राप भी वैठें। (मेज के पोस कुर्सी पर वैठता है। मोहन निकल जाता है।) तुम कहाँ जा रहे हो मोहन?

मोहन-(नेपथ्य में) तुम्हारा सामान ठीक कर दूँ।

शीला—श्राप मुभसे श्रकेले में बार्ते करना चाहते थे। यह श्रवसर ठीक है।

निरंजन—इसलिए कि श्राप मेरी छाया से भागती रही हैं। बोलिए.....।

भीता-.....मायके में कोई भी लड़की श्राप जैसों से भागेगी। ऐमा न होना संकट की गूचना है, इतना भी नहीं जानते श्राप ?

निरंजन—उंह.....ग्रापके विचार यहे पुराने हैं। नया भारत श्रव द्याप लोगों से जुछ ग्रीर चाहेगा।

श्रीला—भारत वही पुराना है। श्राप उसे नया बना कर उसकी श्रीतिष्ठा बिगाड़ रहे हैं। वह नया चाहता है उसको देखिए, उसको समिन्द्र। जो श्राप चाहते हैं, उसका श्रारोप इस पुराने भारत पर न गीजिए।

निरंजन - इस गुग का ..... इस बीसवीं सदी का स्वतन्त्र भारत

पुराना है ? पुराने विचारों में, पुरानी रूढ़ियों में जकड़े रहने का समय भ्रव लद गया। भ्राप देहात में है। राहर में रहतीं, वहाँ की लड़िक्यों को देखतीं, सिनेमा और स्थियों के समाज में जातीं.....

शीला—कहीं भी रहती...कही भी जाती फिर भी भेरी थ्रांतों में भारत नया नहीं लगता। इसकी चाल कभी रुकी नहीं, न यह कभी भरा, न मिटा। एक साँस भी इसकी कब बन्द हुई, बतायेंगे? इसने क्तिने देशों को जन्म लेते और मरते अपनी थ्रांसों देखा है। इसकी श्रायु की, इसकी संजीवनी शक्ति की, प्रतिष्ठा कीजिए।

निरंजन—ग्ररे...ग्राप वड़ी भावुक हैं।

श्रीला—इसकी पताका जब प्रशान्त से लेकर भूमध्य सागर तक उड़ी थी उस समय अपनी कन्याश्रों से जो इसने न चाहा, श्रव न चाहेगा।

निरंजन - यह किवता की भाषा में नहीं समक रहा हूँ।

शीला—आप जिस साँचे में ढल चुके है उसमें इस पुराने देश को न ढालिए। इसका अपना सांचा है, वनें तो अभी भी समय है, उसमें फिर से अपने को ढालिए। जिस देश की रूकियाँ मिट जाती हैं वह देश भी मिट जाता है।

निरंजन — श्राप तकं करना जानती है। में तो समभे हुए था कि... शीला — जो कहें श्राप...।

निरंजन — फिर भी जिसके साथ जीवन भर रहना हो, उसे ठीक से जान लेना...में ही नहीं, कोई भी शिक्षित व्यक्ति चाहेगा।

शीला—जो श्राप सा सजग रहेगा। थोड़ी देर किसी लड़की से वार्तें कर उसके भीतर का सब कुछ खोल कर देख लेना। इस काम में वह बरावर ठगा जाता है फिर भी उसे चेत नहीं होता।

निरंजन—भावी पत्नी को ठीक से देख लेना, समभ लेना, ठगा जाना है ? कैसी वेढंगी वात ग्राप कह रही हैं ?

श्रीला—श्रापकी ग्रवस्था का पुरुप जब मेरी ग्रायु की लड़की के पास जाता है, ग्रन्धा हो जाता है, ग्रीर कहीं संयोग से लड़की सुन्दरी हुई तो वह उन्मत्त हो उठता है। ग्रन्धा क्या देखेगा? उन्मत्त क्या समभेगा? इसलिए ग्रपने ग्राप न देख कर किसी दूसरे से दिखा लेना थाप जैसों के हित की बात है। श्रापको साहस कैसे हुशा कि यहाँ तक चले श्राये मुभे देखने के लिए?

निरंजन-श्रापके भाई ने मुझसे प्रार्थना की.....

द्मीला—उनकी प्रार्थना पर ग्राप कुएँ में कूदेंगे। सांप उठाकर गल में लपेट लेंगे। भावी पत्नी, पत्नी कब ग्रीर कहाँ भावी हुग्रा करती है? जब तक वह ग्रापकी हो न जाय, ग्राप उसके न हो जायें। (हसती है)

निरंजन—तो इसीलिए श्राप बुलाने पर भी मेरे पास नहीं बायीं।
मुभसे भागती फिरीं। में समभता था, देहात की लड़की होने से बाप
लजा रही हैं। श्राप पर्दें में रहना चाहेंगी।

शीला—जी...... अकेले एक पुरुष में जिस स्त्री का प्राण समा जाता है वह किसी न किसी प्रकार के पर्दे में रहना ही चाहती है। लुक-छिपकर श्राप मुफे देखने की चेप्टा करते रहे। बार-बार नाम लेकर श्रापने युनाया.....दो बार मैं गयी भी, फिर भी श्रापका सन्तीय इतने से नहीं हुआ। मैंने देखा, श्राप संयम छोड़ रहे हैं, श्रापका स्वभाव विगट़ रहा है।

निरंजन—भेरे स्वभाव की श्रालोचना करने का श्रविकार शापको नहीं है। में यहाँ बुलाने पर श्रावा था, श्राप जानती है। इस भभकतो सू, धषकते श्राकाश में में नैनीताल होता।

श्रीला—मेरे लिए श्रापको कष्ट हुन्ना इसकी में फुतक हूँ। श्रापके स्वभाव की आलोचना में न करूँ, श्रापका मन करेगा, नमाज की मान्य-लाएँ नरेंगी, श्रार श्रव मुक्ते भी वयों नहीं है यह अधिकार महोदय? जितना कोई विवाह के बाद अपनी पत्नी से पाता होगा, जतना श्राप मुक्ते पहले ही हो लेना चाहते थे। सब कुछ में श्रापको श्रभी दे देती तो फिर बाद के लिए वया रसती? श्रीर न सही, माननिक नगाव नो श्राप पंदा कर खुके हैं। श्रव श्राप जब किसी दूनरी सङ्गी को देसने जायेंगे, श्रापके मन में में भूत उठुँगी। श्रीलों में नहरा जाउँगी। मुक्ते पातर पापको श्रीलें उन वेचारी को देख न पायेंगी। पहने श्रीर भी गोर्ड तड़की देख सुके हैं श्राप ?

निरंजन — इससे श्रापका मतलव क्या है ? देखा या न देखा हो ? मैंने कष्ट दिया श्रापको, क्षमा करें, मैं अब चलूंं। (फुर्सों से खड़ा होता है। शीला चढ़कर-उसका हाथ पकड़ लेती है।)

शीला—रुकिए, अभी आप नहीं जायेंगे। अभी आपने ठीक से न मुभे देखा, न समभा, और फिर स्ठकर आप चले जायें। इस देश की सबसे

वड़ी पत्नी की कामना में आप यहाँ आये थे और लेकर जायेंगे क्या ?

निरंजन—श्राप तो मुक्ते चक्कर में डाल रही है ? श्रापको समभनी वड़ा कठिन काम है। कहिये, फिर न जाऊँ तो क्या करूँ ?

ज्ञीला—पुरुष की समक्त में स्त्री कभी नहीं आती। मुक्ते ग्राप जितना ही ग्रविक समक्तना चाहेंगे, में ग्रापसे उतनी ही दूर होती जाऊँगी। सन्देह का भार पुरुष ढोता है, स्त्री विश्वास चाहती है।

निरंजन—तव ?.....

शीला—यह भ्रवसर न दीजिए कि स्त्री की जीभ चले, वह तक करे, प्रगल्भा और वाचाल बने। पुरुष समुद्र की थाह लगा लेगा। स्त्री में वह वरावर इवता आया है।

निरंजन-मनुष्य की सीघी बोली में कहिए। संकेत की यह भाषा मैं नहीं जानता।

शोला—तव श्रापने इतना सचेत, इतना सजग, वयों रहना चाहा ? कुमारी के सपने न तो पुरुप के घन के, न विद्या के, न रूप के होते हैं।

यहाँ कुछ दूसरा ही रहता है। निरंजन—(विस्मय में) तो फिर कह दें, मैं भी जान लूं।

गरणग—(।वस्मय म) ता फिर कह द, में भी जान लूँ । शीला—कह दूँ ? ग्रापको विश्वास न होगा ।

निरंजन-कहें भी ? विश्वास न करना मेरा ग्रभाग्य होगा ।

शीला—सच कहते हैं ?... अपने मन को टटोल लीजिए। सन्देह की छाया भी वहाँ न हो।

निरंजन--मुभे ग्रधिक लिजत न करें।

र्वीला—स्त्री पुरुप की श्रसावधानी को, उसके श्रल्हड़पन को प्रेम करती है जिसमें वह श्रपने प्रारा से भी सजग नही रहता, संकट से जूभता पलता है। जिसमें वह ऐसी गहरी नींद सोता है कि स्त्री को ग्रवसर ) मिले कि वह उसे प्राण में उठा ले, आँखों में वन्द कर ले। कल रात पर प्राप्त जागते रहे। ग्रभी यह दशा है तो ग्रागे क्या होगा ?

निरंजन—(विस्मय में) ऐं...फैसे जानती हैं श्राप कि में रात भर जागता रहा ?

शीला—हम कैसे जानती हैं ? इस चिन्ता में न पड़ें। श्राकाण के तारे कहते हैं हमसे, पेड़ की पत्तियाँ कहती हैं, हमारे कान श्रधिक मुनते हैं। हमारी श्रांखें श्रधिक देखती हैं। श्राप ही कहें, रात भर श्राप जगे रहें या नहीं? श्राप जो कहेंगे, मैं वही मान लूँगी।

निरंजन-ठीक कह रही है...रात मुभे नींद नहीं आई।

शीला—लेकिन क्यों ? क्या इस श्रायु में श्रापको कंकड़ पर तींद न या जानी चाहिए ? क्या यह श्रापके मन का रोग नहीं है ? यह देश नया नहीं पुराना, वृद्ध हो चुका है । यह चाहता है कि इसमें जो पैदा हों, इसी की तरह लम्बी श्रायु के हों । उनके वाल पक कर हिमालय की याभा पैदा करें । श्रापके नींद न धाने का श्रर्थ है कि श्राप इन देश के प्रति ईमानदार नहीं हैं । नये के फेर में न पड़ कर पुराने को समभें, श्रापके लिए, श्रापके समाज के लिए इसी में कल्याण है ।

निरंजन—तो श्रापके कहने का मतलब है कि मुक्ते श्रापको देखने या बातें करने का...

शीला—जी... श्राज में श्रापके सामने हूँ... श्राप मुक्ते धरा रूप में धरा रहे हैं... कहीं में बीमार पड़ जारुं... कोई श्रंग मूना पड़ जाय... एक श्रोत फूट जाय तब तो श्राप मुक्ते छोड़ देंगे ?

निरंजन---में इतना नीच हूँ ? वया कह रही हैं आप यह ? मेरे भीतर मी हृदय है, उसमें प्रेम और कर्तव्य दोनों हैं।

शीला — फिर देसने या बातें फरने में गया घरत है ? मन्देह ने जहीं भारम्भ है, पहाँ धन्त भी सन्देह है। फिनका नाहम होगा कि ग्रन्थों मा नेगेंग्री फन्या का प्रस्ताव भी आपसे करेगा ? घपने मित्र का विध्यान श्राप न कर सके, किसी दूसरे को भेज देते श्रीर मुभे देखते तव जब वह श्रापका श्रविकार होता।

निरंजन-(मुस्करा कर) विवाह के बाद"

शीला—तव वया, ग्रांर तव में ग्रापके चारों ग्रोर ऐसे माँवर देती जैसे यह पृथ्वी मूर्य की भाँवरी देती है। उसके लिए श्रापको प्रयत्न न करना पड़ता। श्रापके ग्राकर्पण में वेंवकर मैं ऐसी विवश रहती जैसे यह पृथ्वी सूर्य के ग्राकर्पण में विवश है।

निरंजन- जीला...इधर देखो...

शीला — ग्रभी नहीं, पहले वह ग्राकर्षण...ग्रौर तब इसके लिए में विवय रहूँगी।

निरंजन — तव में कह दूं तुम्हारे वावूजी से ?

जीला—कह दो...लेकिन इस नये युग का नया पुरुष ग्रह सब कहने-कहाने में रुढ़िवादी वनेगा।

निरंजन-तो तुम ग्रभी ग्राघात करती चलोगी ?

ज्ञीला-जब तक हम दोनों दो व्यक्ति हैं।

निरंजन-दो व्यक्ति तो हम वरावर रहेंगे।

शीला—यह नया मत है। पुराने में दो व्यक्तियों के भेद श्रीर साहस का मिट जाना ही प्रणय है। यहाँ न रुचि-भेद है, न बुद्धि-भेद। शंकर का ग्राधा सरीर इसीलिए पार्वती का है।

निरंजन-यह सब तुम कहाँ जान गयीं ?

शीला—ग्रपने संस्कार से। सब कुछ पढ़ा ही नहीं जाता, कुछ ग्रनुभव भी किया जाता है।

निरंजन — कैसे कहूँगा, मुक्ते तो लाज आ रही है कल तक यह जितना सरल या अब नहीं है। मैं यहाँ अपने मित्र का उपकार करने आया या और अब यह मेरे साथ उपकार हो रहा है।

जीला —वस, वही पुरानी वात । कन्या के प्रार्थी यहाँ वरावर पुरुप होते रहे हैं । तुम्हें भी वही करना पड़ा, इस नये युग, इस नयी सम्यता में भी । तुम्हें भी दान लेना पड़ेगा किनी भी कन्या का । तिरंजन—श्रीर वही दान मेरा सबसे वड़ा घन होगा। शीला, में भूला था। श्रव मुभे नींद श्रायेगी, ऐसी गहरी कि तुम...

जीला-गला क्यों भर भ्राया ? इतने श्रधीर भ्रभी...

निरंजन-सम्भवतः हम लोगों का पूर्व-जन्म का संयोग था...

श्रीला--- निश्चित । जीवन भर का सुख श्रीर सन्तोप इसी विश्वास पर टिकता है।

निरंजन—(उसकी उँगलियां पकड़ कर) इस एक दिन में मेरा सारा जीवन समा गया इसके पहले जी कुछ था श्रौर बाद को जो कुछ होगा।

द्मीला—सब इसी एक दिन में मिल जायगा, क्यों ? निरंजन—इसी एक दिन में…

(दोनों एक-दूसरे की ओर देखते हैं, पर्दा गिरता है)

## ं उदयशंकर भट्ट

थी उदयशंकर जी भट्ट का प्रादुर्भाव हिन्दी नाट्य-साहित्य में तव होता है जब कि सामान्य स्वरूप-गत मान्यताएँ स्पष्ट हो गई थीं, हिन्दी नाट्य-साहित्य का रूप निश्चित सा हो गया था, राहें वन गई थीं, नमाज की ग्रभिरुचि ग्रीर ग्रावश्यकताएँ लेखक के सामने स्पष्ट दिखाई देती थीं। न तो इन्हें डा० वर्मा की भांति एकांकी-कला को स्पष्ट करने का काम ग्रपने हाथ में लेना पड़ा, न उसकी शास्त्रीयता के लिए इन्हें कलम उठानी पड़ी श्रोर न इतिहासगत अन्वेषण को ही नाट्य-साहित्य की कस्यावस्तु के लिए श्रपनाना पड़ा है। पौराणिक गायाश्रों, इतिहास-गत सत्य श्रीर समाज की समस्याएँ ही लेखक को उतनी भली मालूम हुई कि एक ईमानदार माहित्य की भाँति उसने अपनी भावना को इसी पृष्ठ-भूमि में पनपने दिया है। न तो प्रसाद जी की अन्वेपण-प्रवृत्ति इन्हें धपनी प्रोर खींच सकी है और न लक्ष्मीनारायण मिश्र का बुढ़िवाद ही। भट्ट जी ने सांस्कृतिक चेतना तथा ग्रस्तित्व-परीक्षण को ग्रपना उद्देश यनाया है ग्रीर इसी कारण उन्होंने इतिहास की जानी-स्रनजानी कथास्रों को उगी रूप में स्वीकार कर लिया है जिस रूप में वे ग्राज हमारी संस्कृति ने सम्बन्धित मानी जाती हैं। श्रस्तित्व-परीक्षण के लिए भट्ट जी ने ममाज के भीतर घुसने का सफल प्रयास किया है जिसके फलस्वरूप ्र उनके नाटकों में समाज का खाखलायन, आउप । पर्याकाय हो गया है। भट्ट जी के एकांकी नाटकों को देखकर यह स्पष्ट महीपदीकाश हो गया है। भट्ट जा क एकाका पाउन है। जो ने प्रागीतहासिक करों का सकता है कि कथायस्तु की ट्रिट से भट्ट जी ने प्रागीतहासिक मुग की मान्यताओं से लेकर समसामयिक विचारधाराओं तक का बहुत विस्मृत क्षेत्र सफलता के साथ अपनाया है।

भट्ट जी ने एकांकी क्षेत्र में विभिन्न एवं सफल प्रयोग किये हैं।

जहाँ उन्हें तर्कपूर्ण अनुसंघान का लोभ-संवरण न हो सका है, वहाँ स्वयं मनु-यतरूपा की कथा को भ्रमने लिए जुना है, मध्ययुग में श्राकर कालिदास, सौदामिनी, यिन लेखा के कथानकों को लेकर श्रमनी ऐतिहासिक श्रवृत्ति का परिचय दिया है श्रीर श्राज के युग में श्राकर भट्ट जी ने समाज की मूनभून समस्याओं को श्राग रक्कर उस पर सफल व्यंग्य किया है। इतना ही नहीं, वरच भट्ट जी ने एकांकी के रूप को लेकर भी विभिन्न प्रयोग किये है जिसके फलस्वरूप लोग एकांकी-साहित्य के प्रतीक-रूपक, काव्य-रूपक तथा भाव-नाट्य रूपों से परिचित हो सके हैं। निस्सन्देह हिन्दी एकांकी क्षेत्र के लिए भट्ट जी की यह श्रपनी देन कही जा सकती है।

भट्ट जी यदायंत्रादी हैं। श्राप श्रादर्श का स्वागत तभी तक करनां चाहते हैं, जब तक कि वह जीवन को गतिशील बनाने में सक्षम बना रहे, उसे उन्मुख करता रहे। इसी कारण भट्ट जी के एकांकी जन-जागरण का सन्देश प्रस्तुत करने के सफल प्रयोग कहे जाते हैं। उनमें मानव के प्रति सहज श्रीर सत्य निष्ठा है, मानवता के प्रति श्रद्धा है, श्रीर इसी कारण उनके एकांकी समाज को उन्मुख करने के प्रयोग स्थल बन सके है।

यदि भट्ट जी के समस्त एकांकी एक साथ देखे जायें तो स्पष्ट हो जाता है कि उनमें मूलतः तीन प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं: (१) सामा-जिक विभीपिका के चित्रण की प्रवृत्ति (२) जन-जागरण के सन्देश की प्रवृत्ति, श्रीर (३) सांस्कृतिक चेतना के प्रतिपादक की प्रवृत्ति । सभी प्रवृत्तियों के प्रतिपादन के लिए भट्ट जी ने व्यापक-विस्तारमयी उदारचितना का प्रथय लिया है, संकुचित भावनाएँ भट्ट जी के नाटककारव्यक्तित्व को प्रभावित नहीं कर पाई हैं।

भट्ट जी ने ग्रपने एकांकियों में रंग-मंच की उपेक्षा नहीं की है। साथ ही उन्होंने पाठक की सुविद्या के लिए कुछ, उल में हुए, एकांकियों से पहले कथावस्तु का संकेत कर दिया है। ग्रिभनय को ध्यान में रखते हुए ग्रपने एकांकी नाटकों की 'रंग-सूचनाएँ' भी उन्होंने दी हैं जिससे कि ग्रिभनय के समय रंगमंच कथावस्तु के ग्रनुकूल हो सके।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भट्ट जी मानवता के पुजारी हैं, भूत, वर्तमान तथा भविष्य — तीनों ही उन्हें प्रिय हैं। व्यंग्य उनका प्रस्त्र है, इतिहास श्रीर समाज उनकी क्रीड़ा-भूमि है श्रीर पात्र उनका समवर्ती मानव है।

भट्ट जी की प्राप्त कृतियों में श्रमिनव एकांकी, स्त्री का हृदय, समस्या का श्रन्त, आदिम-युग, विश्विमत्रा श्रीर भाव-नाट्य, श्रन्थकार श्रीर प्रकाश, पर्दे के पीछे, क्रान्तिकारी, एकला चलो रे श्रादि उल्लेग्सनीय हैं।

## ्र सत्य का मन्दिर

वकील—तो उपदेशक जी, बया आप विस्वास करते हैं कि सत्य के प्रचारक स्वामी जी अब नहीं रहे ?

उपदेशक—यकील साहब, श्राप विश्वास की बात करते हैं, मैंने इन भ्रौलों से उन्हें सदारीर स्वर्ग जाते देखा है।

डावटर-किस जगह?

उपदेशक—नदी के किनारे डाक्टर । उस समय लगता था, वे हम नोगों के श्राचरण से बहुत दुखी हो चुके हैं । कोई भी उनकी वात नहीं सुनता । जो मुनता है वह हैंसी उड़ाता है, जो देखता है उन्हें पागल समभता है। वे महाराज दुखी संसार को कल्याए। का मार्ग दिखाने श्राये किन्तु किसी ने उनकी वात पर ध्यान नहीं दिया ।

यकील—दो-एक बार देखा तो उन्हें मैंने भी। एक मामूली श्रवस्था में लेंगोटी लगाये सर्दी-गर्मी की परवा किये विना गलियों, वाजारों में सरय-सरय चिल्लाया करते थे।

खावटर—मुक्ते अपने मरीजों से ही फुलंत नहीं मिलती थी। एक दिन एक मरीज ने वातों-वातों में सुनाया कि एक साधु सत्य-सत्य पिल्लाता न जाने क्या कहता फिरता है। लेकिन यह वात मेरी समक में नहीं चातों कि एक ग्रादमी देह के साथ स्वर्ग कैसे जा सकता है? सी स्वर्ग कोई ऊपर है क्या?

उपदेशक—श्राप हैं डाक्टर, धरीर का इलाज करने वाले, श्रापको शाला का क्या ज्ञान । योगी लोग तो सब कुछ कर सकते हैं। जहाँ चाहे उड़ जामें, जिसके सामने चाहें जैसा वैभव उपस्थित कर दें। जंगल को तहर बना दें, शहर को जंगल कर दें। श्राह्मितिह उनके पीछे भागती हैं, शक्टर साहब। वकील --लेकिन वया उनकी भी ऋद्धि-सिद्धि आपने देखी ?

उपदेशक—मैंने स्वयं अपनी आंखों से एक बुढ़िया के इकलीते वच्चे को, जो मर गया था, शमशान से लौट कर घर आते देखा∙है, वकील साहव ≀

सेठ—तुम मेरे यहाँ कितने दिनों से जथा करते थ्रा रहे हो। मुभे तो, उपदेनक जी ! तुमने नहीं बताया ? नहीं तो मेरा बच्चा भी वयों मरता ? में स्वामी जी के चरणों पर गिर कर उसे बचा न लेता। शिव-शिव, कितनी गलती हो गई।

वकील — सेठ साहव, ऐसा ही था तो मेरे एक मुविकल का मुकदमा जो दो साल से लटक रहा है उसके वारे में मैं स्वामी जी से पूछ न लेता। अकेले बीस हजार का तो मेरा नुकसान हुआ। मुविकल तो वेचारा अभी तक परेशान है। उसका भी कम से कम पचास हजार का तो अब तक नुकसान हो ही चुका होगा। वड़ी गुलती हुई सचमुच। हमने समभा कोई पागल है। ऐसे बहुत फिरते हैं। तो क्या सचमुच वे चले गये?

उपवेशक — क्या में भूंठ कह रहा हूँ। मैंने तो उसी दिन से सत्य वोलने की प्रतिज्ञा कर ती है। मैं समभता हूँ, समभ रहा हूँ कि हमने वड़ी गलती की कि भगवान सत्यरूप की वातों पर घ्यान न दिया। ऐसे लोग कभी-कभी समय से अवतरित होते हैं, वकील साहव।

ठेकेदार-कैसे लोग ?

उपदेशक-- त्रो हो, श्राइये टेकेदार साहव, श्रापने भी कुछ सुना भगवान के सम्बन्ध में ?

ठेकेदार—हाँ, उपदेशक जी, सुना है। ग्रभी सुनकर ग्रा रहा हूँ कि स्वामी जी ने जीवित समाधि ले ली है।

डाक्टर-कहाँ, ठेकेदार साहव ?

ठेकेदार---नदी के जल में, डाक्टर साहव, नदी के जल में । पचासों लोगों के सामने ।

डाक्टर- उपदेशक जी, ग्राप तो कहते थे कि ...

उपदेशक-मीं नहीं मानता, मैंने उन्हें इन आंखों से सशरीर स्वर्ग जाते देखा है।

ठेकेदार—गलत बात है जिस समय स्वामी जी ने समाधि ली उस समय में घाट पर था। में घाट की मरम्मत करा रहा था। मेरे पास उस समय कम से कम पचास से कम क्या मजदूर होंगे। हम सब खड़े-खड़े देखते रहे। मैंने सोचा भी कि स्वामी जी को डूबने न दिया जाय, उन्हें पकड़ कर बाहर कर दिया जाय। इसी बीच उन्होंने जो हम लोगों की ब्रोर देखा तो उससे हम लोग काफी डर गये थे। मजदूरों ने चिल्लाकर कहा, "महात्मा हैं, संत हैं, इन्हें न छेड़ो।" चाहा, सचमुच यहे भाग्य से ऐसे महात्माओं के दर्शन होते हैं। जिस स्थान पर उन्होंने समाधि ती हूँ, में सोचता हूं, उस स्थान पर एक पक्का चयूतरा बनाऊँ।

उपदेशक—वही जगह, वही न, घाट से बाँगे हटकर पूर्व की तरफ। ग्रजब माया है उनकी, किसी को वे जल में समाधि लेते दिखाई दिये, किसी को सबरीर स्वर्ग जाते। उनकी माया कौन जान सकता है ठेकेंदार माहब ! मुफे तो सचमुच वे सदेह स्वर्ग जाते दिखाई दिये थे। मैं उस समय घाट पर एक किनारे बैठा पूजा कर रहा था। शाम का समय था, फुटपुटे का।

ठेकेदार—हाँ, भाई, शाम का समय था। मजदूर जाने की तैयारी में थे। मैं उनके काम का तखमीना लगा रहा था। मैंने ध्यान नहीं दिया कि मह होने वाला है। यह तो अचानक पानी में खिसके तो एक मजदूर जिल्लामा, हम लोग वहाँ पहुँचे। पहुँचे कि वह गायब, कहीं पता तक न लगा कि कहाँ गये। वे अवतारी पुरुष थे, भाई साहब! बड़े भाग्य हमारे।

यफील — ग्रभी तो ग्रापने कहा ठेकेदार साहव कि उन्होंने आपकी घोर देखा तो ग्राप टर गये।

हेकेदार — (चिद्रकर) यकील साहब यह कोर्ट की बहस नहीं है कि जियर चाहा उपर केस मोड़ दिया। श्रीर साहब, उनके बैठे-बैठे पहने ऐना ही नगा था। उपदेशक—ऋदि-सिद्धि प्राप्त महात्मा के सम्बन्ध में कोई एक बात थोड़े ही रहती है, वे तो अनन्त विभूतिमान होते हैं। अब यहीं लीजिए कि मुभे सदेह स्वर्ण जाते दिखाई दिये और ठेकेदार साहव और इनके आदिमयों को जल में समाधि लेते।

आगन्तुक—डानटर साहव! डानटर साहव! चिलये न दुकान मरीजों से घर गई है।

डावटर-हाँ चलो, छरे रामधन, तुमने भी कुछ मुना, उन स्वामी जी ने जल में समाधि ने ली। यहाँ, यही चर्चा हो रही है।

रामधन—क्या सच कह रहे हैं, उपदेशक जी ! मैंने तो उन्हें...

उपदेशक — हाँ, मैंने उन्हें सशरीर स्माधि लेते देखा है, ठेकेदार साहव ने जल में समाधि लेते।

रामधन— ग्राप नहीं जानते, वावाजी की मेरे ऊपर वड़ी कृपा थी। एक वार मैंने ग्राते हुए जब उनकी चरण-धूलि लेनी चाही, तो वो लम्बे पैर वड़ा कर ग्रागे निकल गये। मैंने दूर से ही हाथ जोड़ दिये। ग्राज भी उनके दर्शनों के लिए राह में खड़ा रहा, ग्रव चला आया, दुकान का काम था। डाक्टर साहव की लोग प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए।

सेठ उपदेशक जी, हैरानी की बात है, तुमने उन स्वामी जी के बारे में एक वात देखी, ठेकेदार ने दूसरी बात और डाक्टर के कम्पा-उण्डर ने तीसरी बात । मेरा ख्याल है स्वामी जी के लिए एक मन्दिर बनवा ही दिया जाये। मैं मन्दिर के लिए दस हजार देता हूँ।

डाक्टर मुक्ते ऐसा लगता है सेठ जी कि स्वामी जी की जल-समाधि और देह के साथ ऊपर उड़ने या स्वर्ग जाने की वात...

रामधन लेकिन ... खर, इतना तो मानना पड़ेगा कि हैं वो सिद्ध महात्मा। एक दिन मैंने उनसे घर चलकर भोजन की प्रार्थना की, तो उस दिन जब मैं खाना परोस कर पानी लेने भीतर गया तो बाहर खाकर देखता क्या हूँ कि वो एक कुत्ते को भी अपने साथ खिला रहे हैं। मैंने कहा, "महाराज, यह क्या कर रहे हो," तो बोले, "वच्चा! इसमें भी हमारी आत्मा है।"

डाक्टर--लेकिन कुत्ते के दाँतों में जहर होता है। यह तो बहुत बुरा

है। ग्रनहाइजिनिक। श्रव्यत तो श्रात्मा-फात्मा कोई चीज नहीं है, श्रीर हो भी, तो इस तरह जानवरों के साथ खाना.....।

वकील-जहर का ग्रसर कमजोरों पर होता है।

उपदेशक—भगवान् शिव ने हलाहल पी लिया, श्रीर कोई तो पीकर देखे। वह टें बोल जाय। डाक्टर साहब यह तो श्रद्धा की बात है। इन्हीं स्वामी जी के क्या कम चमत्कार हैं, वीसियों है जो मैंने खुद प्रपनी श्रांखों से देखे हैं। एक बार मरता एक मरीज श्रच्छा कर दिया, एक गरीब की लड़की की शादी करा दी, एक श्रीरत को बच्चा होने का साजीवदि दिया तो बाँक के बच्चा हो गया!

सेठ—जरूर-जरूर, भगवान् के भगत क्या नहीं कर सकते। भगत के वन में हैं भगवान्। नरसी भगत, नन्दामाई की वात गलत थोड़े ही हो सके हैं उपदेशक जी!

उपदेशक—ठीक कही तो सेठ जी, हमारा भी तो श्रव कोई कर्तव्य है। मेरा तो कहना है, ऐसे महात्मा संसार में वार-वार नहीं श्राते। यह हमारा सौभाग्य है कि इस नगर में एक ऐसा महात्मा हुया।

यकील-फिर श्राखिर निश्चय वया हुआ ? मुभे भी कचहरी जाना है, देर हो रही है। श्राज एक बड़ा घोलेघड़ी का केस है।

दाक्टर-हाँ, मुक्ते भी देर हो रही है।

उपदेशक— मेरा प्रस्ताव है, स्वामी जी के नाम पर एक मन्दिर बनवाया जाय। नाम ही सत्य का मन्दिर क्योंकि उन्होंने जीवन भर सत्य का प्रचार किया है। दया का उपदेश दिया है। श्राहिसा की बातें गही हैं। वे बीतराग महारमा थे। न किसी से कुछ लेना न देना। वे जीवन-मात्र के उदार के लिये उपदेश देने श्राये थे इस संसार मे। उस मन्दिर में उनके प्रवचन संगमरमर की शिलाओं पर खुदवाये जायें। सैठ जी, दस हजार देने को तैयार है। कुछ श्रीर भी दिनी बन्धु दे दें। वर्षों शनटर साहव ?

ष्ठाक्टर-हा, बुरा नहीं है। यदि उसके एक हिस्से में हस्पतान होगा

तो में सुबह-शाम एक-एक धण्टे याकर मरीजों को फी देख भ्राया करूँगा।

वकील-विल्कुल ठीक है। परोपकार का काम है। वयों डाक्टर साहव ? तो ट्रस्ट बना दिया जाये ?

डाक्टर--हाँ ग्रीर क्या।

उपदेशक — में इसके विरुद्ध हूँ। स्वामी जो के नाम के मन्दिर का श्रयं है उनके उपदेशों का प्रचार, जिसके द्वारा संसार का कल्याण हो सकेगा। वह ट्रस्ट-फस्ट के वन्वन में नहीं रहना चाहिये। जैसे श्रीर मन्दिर, मठ, श्राश्रम हैं, वैसा ही एक वह भी वने। मैंने महाराज के उपदेशों के प्रचार का भार श्रपने उपर लिया है। मैं गृहस्यी छोड़कर संन्यास लेने की सोच रहा हूँ। सोच क्या रहा हूँ, मैंने बीड़ा उठाया है कि उनका दीक्षित शिष्य न होने पर भी उनके धर्म का प्रचार करूँगा। श्राज संसार में बड़ी श्रशान्ति है। कलह, छल, कपट, राग-द्रेप जैसे शत्रुशों ने हमारे जीवन को विषमय बना दिया है, प्रस्तिया है। सत्यरूप भगवान ने हमारी आज श्रीखें खोल दी है। उन्हीं के धर्म का प्रचार करना मेरे जीवन की उपासना होगी, वयों सेठ जी?

सेठ—नहीं वकील साहव, ऐसे-ई है। ग्रव तुमसे क्या छिपाव है। पिछले साल की तीस हजार बोरी खत्ती में पड़ी, हैं। भगवान स्वामी कृपा करें, जुछ शौर महिंगा हो जाय तो सत्य मन्दिर बना ही समभी, शौर भी दो एक काम रके पड़े हैं।

वकील-वया भाव खरीदा या ?

सेठ-ग्रजी वया खरीदा था, ऐसे ही भर लिया।

वकोल-फिर भी ?

सेठ—ग्रव तुमसे क्या कहूँ, वारह रुपये खरीदा था फसल में। मैं सोचूँ हूँ चौवीस हो जाये तो कहीं काम चले। इसोलिए रोक रखा है।

डाक्टर--तीस हजार वोरी ?

उपदेशक हो जायेगा सेठ जी। भगवान् सत्य स्वामी की कृपा

भ्रवश्य होगी। उन्हें क्या मालूम नहीं है कि सेठ घर्म के काम में इतना रुपया खर्च कर रहे हैं।

सैठ—उनके मन्दिर बनाने का काम मेरे जिम्मे रहा । चूना, गारा इंटें लाकर इकट्टी कर दूँगा।

उपदेशक—ग्राप भी क्या धर्मात्मा हैं ठेकेदार साहब, श्रापने गुरुदेव को समाधि लेते देखा है, बैसे भी श्राप समाधि बनवा रहे थे, मन्दिर भी सही। मेरे स्याल से, जहाँ भगवान ने समाधि ली है, वहीं नदी के तट पर मन्दिर बनवाया जाये।

वकील विल्कुल ठीक है। मैं नगरपालिका के श्रध्यक्ष से श्राज ही निलूंगा श्रीर वात करूँगा। पर मेरा ख्याल है सेठ जी, विना ट्रस्ट के लोगों का विश्वास न तो चन्दा माँगने पर लगता है श्रीर न वह श्रच्छा ही लगता है। मैं उपदेशक जी के त्याग की प्रशंसा करता हूँ, पर इन लोगों का मुँह वन्द करने का तुम्हारे पास कोई साधन भी तो हो।

रामधन—वाह, वाह, वाह! महाराज जीवन भर लँगोटी लगाये पूमते रहे तव तो उनकी वात किसी ने न सुनी, श्रव मन्दिर वनेगा। वाह, वाह, वाह.....!

सेठ-- चुप रह, तू यया जाने, (यकील साहव से) तो क्या हर्ज है। इस्ट भी यन जायेगा। दस हजार तो मेरा लिख लो।

यकील—लिखो उपदेशक जी, सेठ जी ट्रस्ट के प्रधान रहे। उपदेशक—ठीक (लिखता है), उप-प्रधान वकील साहव?

चकील—उप-प्रधान पद के लिए मैं नगरपालिका के श्रव्यक्ष का नाम पेश करता हूँ। इससे कई फायदे होंगे, सेठ जी. एक तो जमीन मिलने में दिक्कत नहीं होगी, दूसरे जरूरत पड़ने पर चन्दा भी इकट्ठा किया जा सकता है।

ं ठेकेदार-वित्कुल सही सलाह है सेठ जी। लिखो जप-प्रधान, यम नाम है जनका ?

बार्टर—राम मनीहर लाल कूचानी । जपवेशक—मन्त्री का काम में सँभालूंगा, वयों सेठ जी ? यकील-भेरा स्थाल है जप-प्रधान तीन हों। उसमें एक ठेकेदार साहब, एक डाक्टर साहब, प्रपने ये बड़े काम के घादमी हैं, बड़े दयाबु, परोपकारी।

ठेकेबार—फिर तो मन्त्री के लिए वकील साह्य का नाम ही ठीक है। उपदेशक जी आप तो है ही ? करना-धरना मत्र आपको है। आप रहें उप-मंत्री।

सेठ---कोपाध्यक्ष का नाम निखो सेठ हरजरा मल । वह मेरा वेटा भगवान का मनत है फिर जो कमी रहेगी यह भी पूरी कर देगा।

सब—ठीक है।

यकील—मैं श्राज ही श्रध्यक्ष से मिलकर जमीन की बात कहाँगा।
ठेकेदार—पक्की हो जाने पर में सामान का उन्तजाम कर लूँगा,
श्रीर खुदाई का काम पुरू कर दूँगा। तीन-चार महीने में श्राप देखेंगे
भगवान का मन्दिर तैयार होगा। उद्घाटन के लिए मेरा विचार है किसी
बड़े श्रादमी को कहा जाये, किसी मन्त्री को।

सेठ--- ठीक है, एक मंत्री से मेरी जान-पहचान है। मिलकर कह

उपदेशक—यहां मेरा विरोध है सेठ जी, यह सत्यरूप भगवान का मन्दिर है, कोई धर्मधाला या हस्पताल तो है नही, मन्दिर में मूर्ति की प्रतिष्ठा बड़े-बड़े विद्वान वेद-पाठियों द्वारा होगी। एक वृहत् यज्ञ होगा जिसमें नगर के सभी गरीवों को भोजन-भण्डारा दिया जायगा। ब्रह्म-भोज होगा। करना हो तो विधि-विधान से करो, यह क्या कि...

सेठ—ठीक है, ऐसे ही होगा पण्डित जी। ग्रपनी सनातन विधि तो चलेगी ही। क्यों वकील साहव ?

वकील—(अपरी मन से) हाँ, फिर भी मेरा स्वाल है...

उपदेशक--श्रापका कुछ भी ख्याल हो, होना यही ।

ठेकेदार—तो ऐसा करो किसी वड़े श्रादमी से मन्दिर की नींव रखवाश्रो। वाकी सब वैसा हो जैसा पण्डित जी कहते हैं।

सेठ--मान लिया, क्यों पण्डित जी, हरे कृष्ण, शिव-शिव ।

वकील--- ग्राज रात को बैठकर बड़े-बड़े लोगों के नाम लिख लीजिए जिनके पास चन्दा माँगने जाना होगा।

सूत्रवार—काम शुरू हो गया। नगर के वड़े-बड़े आदिमयों से चन्दा इकट्ठा किया गया। वकील साहब, जिनकी प्रैक्टिस नाम-मात्र की थी जी तोड़ कर चन्दा इकट्ठा करने लगे। ठेकेदार ने ईंट, चूना, गारे, सीमेंट का इन्तजाम किया। संगमरमर मंगवाया गया। पत्थर की मूर्ति बनयाने उपदेशक जी जयपुर गये। आनन-फानन सत्य के प्रचारक लेंगोटी याले बावा का मन्दिर बन गया। इसी बीच एक दिन"

5 6 t

पत्नी—यह ग्या हो रहा है श्राजकल, ऐसा ही है तो घर में श्राग लगा दो बच्चों को जहर दे दो, तब संन्यास लो, समभे उपदेशकजी।

उपदेशक-तू क्या कह रही है मेरी पत्नी होकर !

पत्नी — में ठीक कह रही हूँ। पिछले दिनों से तुम्हारे रंग-ढंग का कुछ पता नहीं लगता। कहाँ थे इतने दिन ?

उपदेशक—भगवान की मूर्ति वनवाने जयपुर गया था। वह वन गई है। ग्रव प्राग्-प्रतिष्ठा होगी। मैं वहीं रह कर उनकी सेवा किया करूँगा।

पत्नी-मुना है, संन्यास ने रहे हो ?

उपदेशक—हाँ, संन्यास तो लेना ही पड़ेगा, इसके बिना काम भी तो नहीं चलेगा ।

पत्नी-फिर यह बच्चे घीर में .....?

उपदेशक —तुम लोग जैसे रहते आये हो वैसे हो रहना। वैसे भी भव तू बूढ़ी हो गई है, तुभे अब और चाहिए ही नया, साने-पीने का इन्तजाम मन्दिर से होना हो।

पत्नी—में यूढ़ी हैं, तुम्हें कहते शरम तो वाती नहीं। (चित्साकर) में यूढ़ी हैं।

पत्नी-कहाँ से ग्राये ?

उपदेशक-रख ले तू वस।

पत्नी—फिर भी कहाँ से आये ? चुराकर लाये हो या वेईमानी से ?

इतना तो कभी नहीं मिला था।

उपदेशक-भगवान ने दिये हैं। पत्नी-भगवान ने मुक्ते तो कभी ऐसे नहीं दिये। सच वताश्री?

उपदेशक — मुभी मेरे भगवान ने दिये । तुभी तेरा भगवान दे रहा है । कल मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा है । उस समय में संन्यास लूंगा । वहीं

है। कल मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा है। उस समय में संन्यास लूगा। वहां मन्दिर में रहा करूँगा।

पत्नी—(व्यंग से) चेलियाँ नहीं रखोगे क्या ? रख लो, पूजा किया करेंगी ।

उपदेशक-तेरी श्राजा चाहिए।

पत्नी—मुभे कुछ नही चाहिए। मैं ऐसी ही भली। देखो इतना छल-छन्द मत रचो।

उपदेशक—यह छल छन्द है पगली, भगवान की सेवा है; सत्यरूपं भगवान की।

पत्नी—श्रीर जब को सत्य-सत्य चित्लाते मर गये तब किसी ने नहीं सुनी, किसी ने जनकी वात न मानी। श्रव जनकी पूजा हो रही है।

उपदेशक -- अरे पगली, संसार का ऐसा ही नियम है। कृष्ण की पूजा क्या उनके समय में उतनी हुई जितनी अब हो रही है?

#### (आवाज त्राती है)

उपदेशक जी हैं क्या ? उपदेशक जी हैं न ?

उपदेशक—देखो, कोई बुलाता है, जाता हूँ।

पत्नी — मुनो, एक वात बताते जाग्रो । सन्त लंगोटी वाले वाक्षा के मन्दिर में तुम्हें भी कुछ लाभ होगा या ग्रीरों का ही । वह सेठ, ठेकेदार, वकील, डाक्टर, इसमें क्या मिला ?

उपदेशक—ये वार्ते इस समय पूछने की नहीं हैं फिर भी इतनी वात समक्त के कि सेठ की डज्जत बढ़ों है, वह मेम्बरी के लिए खड़ा हो रहा है। ठेकेदार ने मन्दिर प्मान ने एक वंगला दनवा निया है। वकील के बैकों का हिसाब वढ़ गया है। डाक्टर की प्रेक्टिस श्रव दूनी है। सभी ने कमाया है। श्रच्छा, मैं चला।

पत्नी—(कड़क कर) सुनो, ये रुपये लेते जायो । मैं नहीं रखूँगी, लेते जायो । मुक्ते नहीं चाहिए तुम्हारा पैसा ।

(बच्चा आता है।)

बालक-वया है माँ ? क्यों चिल्ला रही हो ! ये क्या है ? (हँस कर) ग्ररे नोट ! इतने सारे ! देखूँ।

पत्नी—(फिड़क कर) नहीं, रहने दे, जा खेल । बालक—तुम नाराज हो पिताजी से । पत्नी—हाँ, जा खेल, जा । बालक—एक नोट तो दे दे ।

पत्नो-चल यहां से।

सूत्रवार—चारों छोर शोर भच रहा है एक तरफ वेद-पाठ की आवाज, दूसरी तरफ यज्ञ की ध्वनि स्वाहा-स्वाहा, तीसरी तरफ श्राहा माँड़ पूरी के लिए, साग हो गया, लड्डू रखर्वे आदि की आवाज।

वकील-शाप तो इस समय बिल्कुल स्वामी लग रहे हैं। उपदेशक जी, यया नाम रखा है भला ?

उपदेशक—स्त्रामी सत्यचित् गिरि, वकील साहव ।

यकील-मूर्ति की प्रतिष्ठा कब है ?

सत्यचित्—बारह बजे का मुहुर्त है। भगवान को पहनाने के लिए रेरामी कपड़े लेने सेठ हरजस मल गये हैं। बड़े सेठ जी ऊपर की देख-भान पर रहे हैं। धाने वाले लोगों के बैठाने के प्रवन्य के लिए डाक्टर साह्य तथा सेठ जी हैं। श्राप जरा भोजन की तरफ ध्यान रखें तो ठीक , हो बकीन साह्य ?

यकील—वह सब काम हो रहा है। मैं पण्डाल की देख-भाल कर रहा हूं। मुस्सियों, मेजों तथा गुलदस्तों के मैंगाने का भार ठेकेदार साह्य पर है। मैं तो प्रधान-मन्त्री हूँ न ? भाषण मैंने लिख लिया है, पटने के निष्

स्वामी—भाषण ग्राप नहीं पढ़ेंगे। मैं वोलूँगा वकील साहव। भगवान के सम्प्रदाय में दीक्षित होने के लिए कुछ लोगों को तैयार करना होगा। कम से कम सौ श्रादमी तो हों। ग्राप सब लोग हैं ही। सबको दीक्षा दी जायगी। उनके सम्बन्ध में नियम मैंने बना लिए हैं। सुनाऊँ ग्रापको!

वकील-हाँ, में वकील की हैसियत से उन्हें एक वार देख जाना चाहता हूँ।

उपदेशक-में सुनाता हूँ।

१—मैं भगवान् सत्यरूप (लॅगोटी वाले बावा) के श्रतिरिक्त और किसी में विश्वास नहीं करूँगा।

२--- मे ही ईश्वर हैं, ये ही अवतार, ये ही इस स्टिंट के पालक, स्जनहार और नाज करने वाले हैं। ३--- उनके वाक्य ही मेरे लिए सब कुछ हैं। जो उन्होंने कहा है,

र--- उनक वाक्य हा मर लिए सब कुछ हैं। जो उन्होंने कहा है।
यही सत्य है श्रीर जो नहीं कहा वह श्रसत्य, भूठा है।

४—में सत्यरूप स्वामी के सम्प्रदाय का भक्त हूँ।

५—इस सम्प्रदाय का नाम होगा सत्यरूप स्वामी-सेवा-संघ । वकील—इस पाँचवें को पहले रिवये, इसके वाद दूसरा; वाकी

क्रम ठीक है। एक बात स्वामी जी!

स्वामी -- कहिये।

वकील-मुभे भी वोलना तो चाहिए ही।

स्वामी—एक वात पूछूँ कितनी प्रैनिटस है आपकी ?

बकील—तुम्हें तो मालूम ही है स्वामी जी, गुजारा भी मुक्किल से

होता है। श्राजकल तो इस परोपकार के काम से.....

स्वामी—समभ गया, ग्राप एक काम करें। वकील —क्या ?

वकाल — क्या ! स्वामी — करें तो कहें ?

वकील-किंदेये अगर फायदे की बात होगी तो जरूर करूँगा।
स्वामी-श्राप संन्यास लेकर मेरे चेले हो जाइये। जहाँ इसका

जनता पर प्रभाव पड़ेगा वहाँ हम लोगों का सम्प्रदाय भी बढ़ेगा। बाकी की चिन्ता थाप न करें। याप दीक्षित हो जाएँ।

वकील—(सोचकर) गोचूँगा । स्वामी—सोचुँगा नहीं, गुगस्य गीन्नम् ।

2

सेठ — (चिल्लाकर) थरे स्वामी जी, श्राप यहाँ क्या कर रहे हैं ? चित्र न वकील साहब श्राप भी, लोग इकट्ठे हो रहे हैं। प्राग्न-प्रतिष्ठा में पहले

स्वामी— प्राण-प्रतिष्ठा से पहले मेरा प्रयचन होगा । चली । सेठ—हौ, चलो ।

(शोरगुल)

200

स्वामी—सत्य भगवान के प्यारे ! आपको तो मालूग ही है कि मंगोटी वाले वावा हमारे नगर में पूम-पूमकर सत्य वोलने, जीवों पर दया करने, सबको एक-सा समभने का उपदेश देने रहे हैं। उन बीतराग मंग्यामी का जीवन जीवों का कल्याण और उन्हें मदुपदेश देने में ही बीता है। उम समय हमने उनकी वातें नहीं मुनीं, उनके उपदेशों में लाग नहीं उद्याय।

डेकेदार-मंक्षेप में कहिए स्वामी जी, श्रीर लोगों को भी बोलना है।

ं स्यामी—ठहरिये, हां ! तो श्राज वे हमारे बीच में नहीं हैं। मैंने उन्हें गरीर के साथ स्वर्ग जाते देखा है।

ठेंगेबार -- गलत बात है, भैंने उन्हें भयने नामने जल में समाधि सेते देगा है।

स्वामी—वीच में मत बोलिये ठेकेवार साहव ! (शोर) मुनिये, मी प्यारे भक्त ! भगवान को छनेक लोगों ने छनेक एपों में देखा है। ठेकेदार साहब ने जल में समाधि नेते और मैंने महारीर स्वर्ग जाने। दें मोगी थे। उन्हें सब प्रकार की निद्धियाँ प्राप्त की।

तेठ-पिट्य बनवाने में जिन नोगों ने जान दिया है उनके नाम बोली, स्वामी जी ! कुछ नोम जल्दी जाना चाहने हैं। स्वामी—में कहता हूँ सेठ जी सुनियं तो, हमने उन्हीं सत्वरप भगवान कं भमं का प्रचार करने के लिए यह मन्दिर बनवाया है। इसमें सेठ रचुमन, सेठ हरजस मन तथा श्रन्य कई दानी महानुभावों ने दान दिया है। दानियों की लिस्ट हमने मन्दिर के द्वार पर दीवार में खुदवाकर लगवाने का निदन्य किया है। दानियों के नाम संगमरमर के पत्यर पर खुदे होंगे। हमारा उद्देश सत्य धर्म का प्रचार करना है। (तालियां)

सेठ -- दान की रकम भी तो बोलो स्वामी जी !

स्वासी—एक तरह मन्दिर के बनवाने में सबसे बड़ा दान केठ रघुमल का है। सेठजी की इच्छा समार त्याग करके भगवान की सेवा करने की है। (तालियां) हमारे बकील साहब ने सत्य धर्म के प्रचार के लिए जीवन-दान देने का निश्चय किया है। वे इस मन्दिर में भगवान के सामने संन्यास लेंगे (तालियां) ग्रीर भगवान की सेवा करेंगे। भगवान के इस सेवक (अपने लिए) ने पृहस्थी छोड़कर भगवान की सेवा का मत लिया है, सो सज्जनो.....

स्त्री—ये लो अपने दो हजार । मुक्ते नहीं चाहिए ये वेईमानी के रुपये। लो ! सब दिखावा है दिसावा। (गड्बड़ी मच जाती है।)

स्वामी - शान्त हो जान्रो भक्ती ! भगवान के प्यारे, यह हमारा सौभाग्य है कि यह वाई भगवान की सेवा में दो हजार रुपये दे रही है ! घन्य है वाई ! (तालियां)

सभा में स्वर-वया नाम है इस वाई का। कीन है बेईमान?

वया कहा ? कैसे रुपये हैं ?

स्वामी - श्राप द्वप रहिये श्रीमान् (गड़बड़ी) जान्त हो जाइये ! शान्त हो जाइये !

वकील — मैं सत्य के प्रचार के लिए अपना जीवन दे रहा हूँ। मैं दीक्षा लूंगा।

स्वामी--धन्य है वकील साहव ! (तालियां)

(इसी बीच जनता में कोलाहल मच जाता है।)

जनता—(चिल्लाकर) लंगोटी वाले वावा था गये ! लंगोटी वाले वावा था गये !

स्वामी-(भरभराये तथा डरे हुए स्वर में) नया "नया हुन्ना !

# 'उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प्रेमचन्द्र की भांति उपेन्द्रनाथ 'ग्रवक' सी उर्दू से हिन्दी क्षेत्र में ग्राये हुए हैं। जिस समय 'ग्रव्क' ने एकांकी लिखना प्रारम्भ किया, हिन्दी एकांकी का स्वरूप पूर्णतः स्वष्ट हो गया था। उसकी विधा निध्यत हो गयी थी, उसकी कलात्मकता स्पष्ट हो गयी थी, संकलनयथी को मान्यता मिल चुकी थी, पाश्चात्य विचारों के एकांकी को नया रूप दिया जा चुका था। मनोविज्ञान का ग्रव्सयकोड़ मिल चुका था, संघपों सथा ग्रन्तंन्द्रों को कथा-विकास के लिए सँजोया जाने लगा था, ग्रादर्श ग्रीर ययार्थ का गठवन्यन हो चुका था, समस्याएँ सामने ग्रा चुकी थीं, कथावत्तुगत भाव-भूमि का विस्तार प्राग्-ऐतिहासिक युग से समसामयिक समाज तक हो गया था। ऐसी परिस्थित में 'ग्रवक' के सामने चहुत ग्रधिक उलभनें न थीं। यदि ग्रावव्यकता थी तो केवल सतकं ध्यक्तित्व एयं दूरदर्शी साहित्यिक चेता की जो सजग रहकर समाज को देराने ना प्रयास करे। ग्रव्क जी को इसमें सफलता मिली है—यह सत्य है।

'ग्रदक' की एकांकी कला पर पाक्चात्य कला स्पष्ट परिलक्षित होती है। जहाँ एकांकीकार 'ग्रदक' वातावरण की सृष्टि करते हैं, उसकी सत्यता प्रतिपादित करते हैं, यथायं की श्रनुभृति प्रतिपादित करते हैं, यहां पादचात्य दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। चरित्र-निर्माण एवं विकास के निए मनोविज्ञान का श्राधार जिस रूप में 'ग्रदक' ने स्वीकार किया है, यहां भी विदेशों देन यहां जा सकता है। यही कारण है कि 'ग्रदक' के 'एकांकी चरित्र-विकास तथा नमस्यात्रों के प्रतिपादन में वेजांड़ हैं। इनके भीनर का साहित्यकार मानव-हृदय को भली भौति पहचानता है, विदेशका: नारी-हृदय को। परिकामस्वरूप इनके नारी पात्र प्राय: पाठक मा ग्रन्तर सू लेते हैं।

प्रकार जी ने प्रानी क्यावस्तु के लिए नमाज, श्रीर विशेषतः परिवार की चुना है। परिवार की समस्वाश्रों को मामने रावकर 'ग्रव्क' ने बड़ी ही सफलता के माम गमाज पर व्यंग कि हैं। इनके लिए इन्होंने यधार्यवादी व्यक्षात्मक धैली को प्रप्रनाया है। साथ ही, प्रकार जी की हिट रंगमंच को श्रीकल नहीं कर मकी है। सच तो यह है कि उनका नाटककार अन्तर श्रीर बाह्य —दोनों संमार में भली शांति परिनित्त मालूम होता है। यह नहीं है कि 'प्रक्ल' के नाटक परम्पराश्रों से परे हों गये हों, उन्हें भारतीय नाटध परम्परा का पूर्ण जान है पर पाइनात्य कलात्मक हिटकोण से उनमें नया रंग भण गया है जिसमें श्राज के युग के श्रनुकूल वे नये-से मालूम होने लगे है। हिन्दू-परिवार की समस्याश्रों का श्रध्ययन श्रीर श्रनुक्ष उनके एकांकी नाटकों में मुखरित हुमा है। स्विवादी परम्पराश्रों से घायल तथा बुद्धियादी तकों से बोफिल भारतीय समाज इनके एकांकियों की भाव-भूमि है।

एकांकी के क्षेत्र में अदक जी ने सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक स्थानों के अनुकूल एकांकी की विभिन्न विधाओं का, प्रहमन, सांकेतिक आदि गैलियों का प्रयोग किया है पर सभी का एक उद्देश्य रहा है—सामाजिक विभीषिका का पर्वाफास करना, धीर इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। उन्होंने आलोचक की पैनी हिट से समाज का अन्तर्हेन्द्र देखा है और मध्यवर्गीय समाज की नस-नस पहचानने की कोशिश की है। यही कारण है कि पात्रों को जिस प्रकार का मनोविज्ञान दिया गया है, उसमें आकर्षण की क्षमता वनी हुई है, अनुभव की वस्तु है जिसे 'श्रदक' की निजी देन मानना चाहिए।

रंगमंच की उपेक्षा 'ग्रव्क' के नाटकों में नहीं है। उनकी कृतियों में श्रंजो दीदी, पर्दा उठाग्रो पर्दा गिराग्रो, मस्केवाजों का स्वर्ग, देवताग्रों की छाया में, प्रधिकार का रक्षक, लक्ष्मी का स्वागत ग्रादि उल्लेखनीय एकांकी हैं।

# अधिकार का रज्ञक

#### समय--आठ वजे सुबह

स्थान-मि० सेठ के मकान का ड्राइंग रूम।

[वायों ओर, दोवार के साथ एक बड़ी मेज लगी हुई है जिस पर एक रैंक में करीने से पुस्तकें चुनी हैं, दायें-वायें कोनों में लोहे की दो ट्रे रक्खी हैं, जिनमें से एक में आवश्यक कागज-पत्र श्रादि और दूसरी में समावार-पत्र रक्खे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्ग गज का चौकार दुकड़ा रपता है जिसके नीचे कागज दवे हुए हैं। शीशे के दुकड़े और कितावों के रैक के मध्य में एक सुन्दर कलमदान रक्खा हुआ है श्रीर वो कलम शीशे के दुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज के इस झोर एक गह्दार फुर्सी है, जिसके पास ही दायों ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चौंगा रयखा हुआ है। स्टूल गी दायों ओर एक तस्तपोश है, जिसमें सफाई से विस्तर विद्या हुआ है। कुर्सी श्रीर तरतपोश के बीच में स्टूल इस तरह है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चौंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सफता है। तरतपोश के पास एक आराम फुर्सी पड़ी हुई है। वायों दीबार में दी जिड़किया हैं, जिनके मध्य केलेण्डर लटक रहा है। वायों और बीबार में एक दरवाजा है, जो घर के वरामदे में खुलता है।

पर्दा उठने पर मि० सेठ कुर्सी पर बंठे कोई समाचार-पंत्र देखते मजर माते हैं।

हैसीफीन की घण्टो बजतो है। मि० सेठ समाचार-पत्र ट्रे में फॅक कर घोगा उठाते हैं।

मि॰ सेठ - हैलो ... (जरा वककर, और ऊँचे स्वर में) हेली हीं, हीं,

में हा बोल रहा हूँ, घनश्यामदास । आप...ग्रच्छा...आप, रलाराम जी, मन्त्री हरिजन सभा हैं । नमस्ते । (जरा हँसते हैं) सुनाइए महाराज, कल जलसे की कैसी रहीं ?

श्रावाज — श्रच्छा । श्रापके भाषण के बाद हवा पलट गयी ? सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये ?

मि० सेठ — ठीक-ठीक । आपने खूव कहा, खूव कहा आपने । वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितों, पददिलतों और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। वच्चों को ही लीजिए, घरों में उनकी दशा कैसी ओचनीय है? उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पढ़ित कितनी पुरानी, ऊल-जलूल और दिक्यानूसी है? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित दवाव में रखकर उन्हें कितना डरपोक और भीच वनाया जाता है? उन्हें...

( छोटा बच्चा बलराम भीतर श्राता है )

वलराम-वावूजी, वावूजी हमें मेले.....

नि॰ सेठ—(पूर्ववत् टेलीफोन पर वार्तें कर रहे हैं, पर आवाज तिनक ऊँची हो जाती है) हाँ, हाँ, मैं कह रहा हूँ कि मैंने वच्चों के लिए उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य.....

बलराम—( श्रीर समीप आकर कुर्ते का छोर पकड़कर ) वायूजी.....

मि॰ सेठ — (चाँगे से मुँह हटा कर, क्षोध से) ठहर, ठहर कमवस्त । देखता नहीं, मैं टेलीफोन पर बात.....

( बच्चा रोने लगता है )

मि० सेठ—( टेलीफोन पर ) में श्राप से श्रभी एक सेंकिड में बात करता हूँ, इघर जरा शोर हो रहा है।

( चौंगा खट से मेज पर रख देते हैं )

( कान पकड़ कर उसे दरवाजे की तरफ घसीटते हैं, वच्चा रोता हुआ वैठ जाता है।)

( नीकर को भ्रावाज देते हैं ) रामलखन, भ्रो रामलखन i

रामलखन—(बाहर से ) श्राये रहे बावूजी ! (भागता हुआ भीतर आता है। सांस फूली हुई है ) जी, वाबूजी ।

( मि॰ सेठ मीकर की पीटते हैं।)

मूबर ! हरामखोर ! पाजी ! क्यों इसे इधर ग्राने दिया ? क्यों इधर ग्राने दिया इसे ?

रामलखन-अव बाबू काहे गारत हो ? लिए तो जात रहे ! (लड़के का बाजू बाग कर उसे बाहर ते जाता है।)

मि० सेठ-शीर मुनो, किसी की इधर मत याने देना। कोई वाहर से भाए तो पहले श्राकर खबर दे देना, समके। नहीं तो मार-. मार कर साल उधेड दुंगा।

( नौकर ग्रौर सड़के को बाहर निकाल कर जोर से कियाड़ लगा व देते हैं।)

हुँ, धहमक ! मुक्त में इतना समय नव्ट कर दिया। ( मेज पर से चींगा उठाते हैं। )

(तिनव पर्कश स्वर से ) हैली......( आवाज में जरा विनम्नता साकर ) श्रन्छ। आप श्रभी हैं (स्वर की कुछ संयत करके ) तो मैं यह रहा था कि प्रान्त में में ही ऐसा व्यक्ति हैं जिसने उस शत्याचार के विद्व श्रान्वोलन किया, जो घरों श्रीर स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चों पर किया जाता है श्रीर किर वह मैं ही हैं, जिसने पाठशान्तायों में सारीरिक दण्ड को तत्काल बन्द कर देने पर जोर दिया। दूसरे, श्रत्याचारों से पीड़ित लोग घरों में काम करने वाले भोल-भाले निरीह नीकर हैं, जो भूर मानिकों के जुत्म का शिकार बनते हैं। इस श्रत्याचार और श्रन्याय मो जह में उसाइने के हेतु भी मैंने नीकर-यूनियन स्थापित की है। एमने श्रितिस्त साह्यण होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया, उनके स्वरंगे यो, उनके श्रियकारों की, रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर

दिया है और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं धारा सभा में गया लो......

# (दरवाजा खुलता है)

रामलपान—(दरवाजे से कांक कर) यावूजी जमादारिन.....

मि० सेठ—(टेलीफोन पर वात जारी रखते हुए) में वहाँ भी हरिजनों की सेवा करूँगा। ग्राप ग्रपनी हरिजन-सभा में इस वात की घोपणा कर दें।

रामलखन—(जरा श्रन्दर ग्राकर) वाञ्चजी !.....

मि० सेठ—(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफोन में) नहीं, नहीं, में नौकर से कह रहा था (खिसियाने से होकर हॅसते हैं) हाँ, तो ग्राप घोषित कर दें कि में ग्रसेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिफाजत करूँ गा ग्रीर वे मेरे हक में प्रोपेगेंडा करें।

है...वया ?.. प्रच्छा ग्रच्छा.. मै ग्रवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा, वया करूँ ग्रवकाश नहीं मिलता, हि हि...हि हि... (हसते है) ग्रच्छा नमस्कार । (टेलीफोन का चौंगा रख देते हैं)

(नौकर से) तुम्हें तो कहा था, इधर मत श्राना ।

रामलखन—ग्रापई तो कहे कि कोऊ ग्राए तो इत्तिला कर देई, मुदा श्रव ई जमादारिन अपनी मजूरी माँगत.....

मि० सेठ—( गुस्से से) कह दो उससे, अगले महीने आए, मरे पास समय नहीं । चले जाओं । किसी को मत आने दो ।

भंगिन — ( दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर में ) महाराज दूशों । नहाम्रो, पूतों फलो। दो महीने हो गए है।

मि० सैठ-कह जो दिया। जाग्रो। ग्रव समय नहीं।

(दरवाजें से भगवती प्रवेश करता है) भगवती—जय रामजी की वावूजी। मि० सेठ—तुम इस समय क्यों ग्राए हो भगवती? भगवती—बावूजी, हमारा हिसाव कर दो।

मि० सेठ--(चेपरवाही से) तुम देखते हो, ग्राजकल चुनाव के कारण युद्ध नहीं सूझता । कुछ दिन ठहर जाग्रो । भगवती—वावूजी, ग्रव एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते। ग्राप

हमारा हिसाब चुका दीजिए।

मि॰ सेठ-(जरा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाग्री। यहाँ ग्रपना तो होग नहीं ग्रीर तुम हिसाव-हिसाव चिल्ला रहे हो।

भगवती-जन आपकी नौकरी करते है तब खाने के लिए श्रीर कहाँ

मगिने जाएँ।

मि० सेठ-- ध्रमी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

मगमती — वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग में विनये की भेंट हो गया था, दूसरे से मुदिकल से आज तक काम चला है।

मि॰ सेठ-(जैय से रुपया निकाल कर फर्झ पर फेंकते हुए) तो लां। श्रभी यह एक रुपया ले जाश्रो।

भगवती-नही बाबूजी, एक नहीं। ग्राप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिल तीन महीने हो गये है। एक-एक, दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी ब्राखिर बीवी-वच्चे हैं, उन्हें भी खाने-भोदने को चाहिए। श्राप एक दिन के चाय-पानी मे जितना खर्च कर ' देते है, उतना हमारे एक महीने...

मि॰ सेठ-(क्रोध से) नया बक-बक कर रहे हो ? कह जो दिया, भनी यही न जाग्री, बाकी फिर ले जाना ।

भगवतौ-हम ती श्राज ही सब लेकर जायेगे।

मि॰ सेठ--(उठकर, और भी कोध से) नगा कहा ? ग्राज ही लोगे ? मभी लोगे ? जा, नही देते । एक कौड़ी भी नहीं देते । निकल जा यहाँ म, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे । पाजी, हरामस्रोर, सुश्रर, श्राज तप, सब्जी में, दान में, सीदा-मुलफ में, यहाँ तक कि वाजार से ग्राने यानी हर चीं ज में पैमा लाता रहा, हमने कभी कुछ न कहा भीर अब, मीं परदता है। जा, निकन जा। जाकर ग्रदानत में मामला चला दे। चोरी के श्रपराध में छ: महीने के लिए जेल न भिजवा दियातों नाम नहीं।

भगवती—सन है वावूजी, गरीव लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, टाकू है, ब्रीर धमीर यदि ब्राँखों में घून भोंक कर हजारों पर हाय माफ कर जाएँ, चन्दे के नाम पर सहसों.....

नि॰ सेठ—(बोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं, (नौकर को आयाज देते हीं) रामनयन ! हो रामलयन !

रामलपन-जी वायूजी, जी वायूजी।

(भागता हुन्ना रामलयन भोतर भाता है)

मि॰ सेठ-इसको बाहर निकाल दो।

रामलातन — (भगवती के बिलट्ठ चीड़े-चकले दारीर की नम्न से दिख तक देख कर) ई को बाहर निकारि दें, ई हमसों कब निकस, ईती हमें निकारि दे.....

मि॰ सेठ—(बाजू से रामलखन को परे हटाकर) हट तुआसे क्या होगा ?

(भगवती को पकड़ कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं) निकली, निकली।

भगवती — मार लें, श्रीर मार लें, हमारे चार पैसे ऱख कर आप लक्षाधीश न हो जायेंगे बाबूजी।

(मि॰ सेठ उसे बाहर निकाल कर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं।)

मि० सेठ — (रामलखन से) तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो? निकलो।

# (रामलखन डर कर निकल जाता है।)

(तरत पर लेटते हुए) मूर्ख, नामाकूल। (फिर उठकर कनरे में इघर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर की आवाज देते हैं) रामलखन! श्रो रामलखन!

रामलखन — (बाहर से) आये रहे वावूजी ! (प्रवेश करता है)

मि॰ सेठ-ग्रखवार श्रभी श्राया है कि नहीं ?

रामलखन — या गया वायूजी, वड़े काका पढ़ि रहन, भ्रभी लाए देत ।

मि० सेठ - पहले इधर वयों नहीं आया ? कितनी वार तुमे कहा, अलयार पहले इधर लाया कर। ला भाग कर।

### (रामलखन भागता हुआ जाता है।)

मि० सेठ — (धूमते हुए अपने आप) मेरा वक्तव्य कितना जोर-दार था, छात्रों में हलचल मच गयी होगी। सब की सहानुभूति मेरे साथ हो जायगी।

(टेलीफोन की घण्टी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चौंगा · उठाते हैं।)

(टंलीफोन पर, धीरे से) हेलो । (जरा ऊँचे स्वर में) हेलो ।...कौन साह्य...मन्त्री हौजरी यूनियन । अच्छा, अच्छा नमस्कार, नमस्कार । सुनाहए, श्रापके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ?

थया ? सब मेरे हक में बोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। मैं भाषका श्रस्यन्त श्रामारी हूँ।

इस ग्रोर से ग्राप विल्कुल निक्ष्यित रहें। में उन ग्रादिमयों में से नहीं जो कहते कुछ हैं करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ भीर जो करता हूँ वही कहता हूँ। ग्रापने मेरा इलैक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव सम्बन्धी घोषणा) नहीं पढ़ा। में ग्रसेम्बली में जाते ही मजदूरों की ग्रवस्या सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-प्राराग, पठन-पाठन ग्रीर दूसरी मांगों के सम्बन्ध में विशेष विल धारा-सभा में पेरा करूँगा।

नया ? हाँ ...हाँ, इस ब्रोर से भी मैं वेपरवाह नहीं। मैं जानता हैं, इम मिलिसिने से श्रमजीवियों को किस-किस मुसीवत का सामना परना पहता है। ये पूँजीपित गरीव मजदूरों के कई-कई महीनों के वेतन रोककर उन्हें भूगों मरने पर विवश कर देते हैं, स्वयं मीटरों में पर करते हैं, पानदार होटलों में साना खाते हैं, श्रीर जब ये गरीव रात- दिन परिध्यम करने के बाद, लोहू-पानी एक कर देने के बाद—ग्रपना मजदूरी माँगते है तब उन्हें हाथ तंग होने का, कारोबार में हानि होने का ग्रथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बना टाल देते हैं। में ग्रसेम्बली में जाते ही एक ऐसा दिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जाएँ ग्रौर जिन लोगों ने गरीब श्रमिकों के वेतन तीन महीने से ग्रधिक दवा रक्खे हों उनके विरुद्ध मामला चला कर उन्हें दण्ड दिया जाए।

हाँ, स्नापकी यह माँग भी सोलहों स्नाने ठीक है। मैं स्रसेम्वली में इस माँग का समयंन करूँगा। सप्ताह में ५२ घंटे काम की माँग कोई स्रमुचित नही। स्नाखिर मनुष्य स्नौर पशु में कुछ तो स्नन्तर होना ही चाहिए। तेरह-तेरह घटे की ड्यूटो। भला काम की कुछ हद भी है।

(धीरे-धीरे दरवाजा खुतता है ग्रीर सम्पादक महोदय भीतर ग्राते हैं पतले दुवले से—आंखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का कब्ट है। धीरे से दरवाजा वन्द करके खड़े रहते हैं।)

मि॰ सेठ — (सम्पादक से) आप वैठिये। (टेलीफोन पर) ये हमारे सम्पादक महोदय श्राए है। श्रन्छा, तो संच्या को श्रापकी सभा हो रही है। में श्राने की कोशिंग करूँगा। श्रीर कोई वात हो तो कहिए। नमस्कार (चौंगा रख देते हें) (सम्पादक से) वैठ जाइए। श्राप खंडे क्यों है?

सम्पादक—नहीं, कोई वात नहीं । (तकल्लुफ के साथ कोच पर वंठते हैं।)

# (रामलखन श्रखवार लिए श्राता है।)

रामलखन — वड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरदस्ती लेई श्राये । मि० सेठ— (समाचार-पत्र लेकर) जा-जा, वाहर बैठ ।

(ज़ुर्सी को तख्तपोश के पास सरका कर उस पर बैठते हैं, पांव तख्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।) सम्पादक—मैं मैं मि० सेठ—(अखबार बन्द करके) हाँ, हाँ पहले ग्राप ही फर्माइए। सम्पादक—(श्रोठों पर जीभ फरेते हुए) बात यह है कि मेरी... मेरा मतलब है...कि मेरी श्रांखें बहुत खराब हो रही हैं।

मि॰ सेठ — श्रापको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था। कहिए, डाक्टर खन्ना के नाम रुक्ता लिख दूं।

सम्पादक—नहीं, यह नहीं (यूक निगल कर) बात यह है कि मेरी ग्रांक इतना बोक नहीं सहन कर सकतीं। प्राप जानते हैं, मुके दिन के बारह वजे प्राना पड़ता है। बिल्क प्राजकल तो साढ़े ग्यारह ही बजे प्राता हूँ। शाम को छ:-सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे प्राता हूँ थोर फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

नि॰ सेठ — तो श्राप इतना न बैठा करें; बस जल्दी काम निवटा दिया...

सम्पादक में तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निवट सकता है? एक में हूँ और दो दूमरे आदमी है, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं नठीक लेख लिख सकते हैं; औरपत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी, सायद काम जल्द खतम हो जाए, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज ।

मि॰ सैठ - हाँ, हाँ समाचार तो रहना नहीं चाहिए।

सम्पादक — श्रीर फिर यही नहीं, श्रापक भाषणों की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते-करते हैं इ वज जाता है। अन श्राप ही बनाइए पहले कैंने जा सकते हैं ?

मि॰ रीठ —(बेजारी से) तो प्रानिर ग्राप गमा चाहने हैं ?

सम्पादण---भैंन पहुँउ भी निवेदन किया या कि यदि एक छौर भादमी का प्रवत्मा कर दें तो प्रच्छा हो। दिन छौ वह छा जाया करे, रात को में, और फिर प्रति सणाह बदली भी हो नकती हैं। डियसे...

पि॰ रोठ —में बायते पहने भी कह चुना हूँ, यह बसम्भव है, बिस्तुन प्रयास्थ है। धनाबार कोई बहुत लाम पर नहीं चल रहा। ्स परे ऐक अंदि सम्पादक क वतन का वाभ कैसे जाला जा सकता है । अगले महीने पाँच रुपये में आपके बढ़ा दुंगा ।

सम्पादक — मेरा स्वास्थ्य श्राज्ञा नहीं देता । श्राग्विर शांखें कब हर बारह-बारह, तेरह-तेरह घण्टे काम कर नकती है ?

मि० सेंठ—कैंसी पूर्वी जैसी बात करते हो जी। छः महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे श्राप काम छोड़ना चाहें तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं दस श्रादमी मिल जाएँग, लेकिन.....

# (रामलयन भीतर आता है।)

रामलयन – बाहर दुइ लड़का श्रापसे मिलना चाहत रहन । मि० सेठ —कोन हैं ?

रामलखन— कोई सेक्टरी कहे रहन.....

मि० सेठ — जाग्रो, युला लाग्रो (सम्पादक से) श्राज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुन्ना है, मालूम होता है उसका कालेज के लड़कों पर श्रच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक—(मु ह फुलाये हुए) ग्रवस्य पड़ा होगा ।

मि० सेठ — मैंने छात्रों के श्रीधकारों की हिमायत भी तो खूब की है। छात्र-मंघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं मैंने उन सब का समर्थन किया है।

(दो लड़के प्रवेश करते हैं । दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रखी है, दूसरे के गले में खुले कालर को कमीज है ।)

दोनों--नमस्ते।

मि० सेठ -- नमस्ते ।

# (दोनों कोच पर बैठते हैं।)

मि॰ सेठ — किहए में श्रापकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? खुले कालरवाला — हमने श्राज श्रापका वक्तव्य पढ़ा है। मि॰ सेठ — श्रापने उसे कैसा पसन्द किया ? यही लड़का — छात्रों में सब श्रीर उसी की चर्चा है। वड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि॰ सेठ - शापके मित्र किघर बोट दे रहे हैं ?

यही लड़का—कल तक कुछ न पूछिए, लेकिन मैं आपको निश्चय विश्वास दिलाता हूँ कि इस बयान के वाद ७५ प्रतिशत आपकी स्रोर हो गए हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी तरफ या।

मि॰ सेठ—( प्रसन्तता से ) श्रीर मैंने गलत क्या लिखा है ? जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका हो, वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या साक करेंगे, युवकों को तो उस नेता की श्रावश्यकता है जो शरीर चाहे यूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार बूढ़े न हुए हों, जो रिकाम से सीक न खाए, गुधारों से कन्नी न कतराए।

बही लढ़का —हम अपने कालेज के प्रवन्ध में भी कुछ परिवर्तन भारते थे परन्तु कालेज के सर्वेसवीशों ने हमारी वात ही नहीं सुनी।

मि॰ सेठ—श्रापको प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था। यही लड़का —हमने हड़ताल कर दी है।

मि० सेठ-श्रापने गया माँगें पेटा की है ?

षष्ट्री सट्का —हम वर्तमान शिक्षिपल को नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रवत्य कर सकता है, कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँस तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सबंबा धमुचित ग्रीर जनके नातेदारों से ग्रस्यन्त अपमानजनक है।

नि॰ सेठ —(मुख उत्साहहीन होकर) तो भाग क्या चाहते हैं ? बोनों —हम योग्य त्रिसिपल चाहते हैं ?

मि॰ सेठ - (गिरी हुई धायाज में) धापकी मांग उचित है, पर यन्छा होता यदि धाप हड्तान करने के बदले कोई वैचानिक रीति प्रयोग में नाते, प्रवन्धकों से मिल-जुल कर मामला ठीक करा लेते।

यही सङ्गा-हम सब कुछ करके देस चुके हैं।

मि॰ सेठ---हुँ !

टाईबाला लड़का -वात यह है जनाब कि छात्र कई वर्गों से

खंतमान प्रिसिपल से श्रसन्तोष प्रकट करते श्रा रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तिनक भी परवा न की। कई बार श्रावेदन-पन कालेज की प्रवत्वक कमेटी के पास भेजे गये पर कमेटी के कानों पर जूं तक न रॅगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है, पर किठनाई यह है कि कमेटी काफी मजयूत है, प्रेस पर उमका श्रविकार है। हमारे विकद्ध भूठे-सच्चे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे हैं, श्रीर हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। श्रापने छानों की सहायता का, उनके श्रविकारों की रक्षा का वीड़ा उठाया है, इसीलिए हम श्रापकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

मि० सेठ—( श्रन्यमनस्कता से ) में श्रापका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं, कल दप्तर में जाकर इनको श्रपना वयान दे दें। वे जितना उचित समभेंगे छाप देंगे।

दोनों - (उठते हुए) बहुत वेहतर, कल हम सम्पादक जी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि० सेठ श्रीर सम्पादक नमस्कार।

## (दोनों का प्रस्थान)

मि॰ सेठ—(सम्पादक से) यदि कल ये आएं तो इनका वयान हरिगज न छापना । प्रिसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।

सम्पादक—(मृंह फुलाए हुए) बहुत ग्रच्छा ।

मि० सेठ—ग्राप घनराएँ नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफत ग्रा गयी ? जब मैंने ग्रखवार घुरु किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे काम किया करता था। यह महीना ग्राप किसी न किसी तरह निकालिए। चुनाब हो ले, फिर कोई प्रवन्ध कर दूंगा।

सम्पादक—(दीर्घ निःश्वास छोड़ कर) बहुत ग्रन्छा ।

(मि॰ सेठ समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाजा जोर से खुलता है और बलराम का वाजू थामे श्रीमती सेठ वगुले की तरह प्रवेश करती हैं।)

श्रीमती सेठ-मीं कहती हूँ, श्राप बच्चों से कभी प्यार करना भी

सीखेंगे। जब देखो धूरते, भिड़कते, डाँटते नजर याते हो, जैसे बच्चे न हों, पराये हों। भला थाज इस बेचारे से क्या श्रपराध हो गया जो पीटने नमें ? देखों तो सही ! श्रभी तक कान कितना लाल है।

मि० सेठ — ( पूर्वचत् समाचार-पत्र पर हिष्ट जमाए हुए ) तुम्हें यभी बात करने का सलीका भी आयेगा ? जाओ, इस समय मेरे पास समय नहीं है।

श्रीमती सेठ—श्रापके पास हमारी वात मुनने के लिये कभी समय होता भी है ? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल श्राता है। इतनी देर से ढूँढ़ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसों श्रावाजें दीं, घर का कोना-कोना छान मारा। श्राबिर देपा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। श्राविर क्या बात हो गई थी ?

मि० सेठ--(कोव से अखबारों को तखतपोश पर पटक कर) नया वके जा रही हो? वीस बार कहा है कि इन सब को सम्भाल कर रमका करो। म्रा जाते हैं मुबह-मुबह दिमाग चाटने के लिए।

(श्रीमती सेठ यस्चे को पकड़कर चप्पल लगाती हैं, बस्चा रोता है)

श्रीमती सेठ—तुमें कितनी वार कहा है, इस कमरे में न जाया गर। ये पापा नहीं दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर हाथ फेरेंगे, उनके स्वारच्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के भाषणा झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिये, भूलकर भी प्यार गा गुक्त शब्द जवान पर न लायेंगे।

### (बच्चे के जोर से चप्पत लगाती है)

श्रीमती तेठ—नुभे कितनी बार कहा है, न जाया कर इस कमरें में। में तुभे नौकर के साथ मेला देखने भेज देनी (आयाज ऊँची होते-होते रोने की हद तक पहुँच जाती है)। स्वयं जाकर दिखा लागी। तू क्यों आया यहाँ मार नाने, मान तुष्याने।

मि० सेठ--(ब्रोध से पागल होकर, पत्नी को दकेलते हुए) में भरता है, इने पीटना है सो उपर जातर पीटो, यहाँ इन कमरे में प्राकर क्यों और मना दिया। अभी कोई का जाए तो क्या हो ? जिननी बार कहा है, इस कमरे में न जाया करों। घर के सन्दर जावार बैठा करें।

# ( श्रीवनी मेठ तुनव कर सड़ी हो जाती हैं। )

थीमतो सेठ —शाप कभी घर के घन्दर घाएँ भी। प्रापक तिए की जैसे घर के धन्दर भाना पाप करने के दरावर है। साना उस कमरे में साधी, हेलीफोन निरक्षोंने उस कर उसी कमरे में सोधी, साध दिन मिलने वालों का बांना लगा करें। न हो तो पुछ निराने रही, निर्मों की पढ़ने रही, पढ़ों न तो बँठे मोचने ही रही। घान्दिर हमें फुछ कहता हो तो किय समय कहें?

मि० सेठ--कीन सा मैंने उसका मर फोट दिया है, जो फुछ कहते की नीवत आई ? जरा मा उसका कान पराहा था कि वस प्राकाश मिर पर उठा निया।

थीमती सेठ-निर फोउने का घरमान रह गया हो तो वह भी निकाल टालिए। कहे तो मैं ही उसका निर फोट दूँ।

(जन्मादियों को भांति बच्चे का सिर पकड़ कर तस्तपोश पर मारती है।)

मि० सेठ—(श्रीमती नेठ को तड़ातड़ पीटते हैं) में कहता हूँ तुम् पागल हो गयी हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधा जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधा जाकर फोडो। तुम्हारी नित्य की वक्षक से तंग श्राकर में उधर एकाल में श्रा गया हैं। अब यहाँ श्राकर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू की दिया है। यहां हो ? यहाँ मे भी चला जाऊं ?

श्रीमती सेठ—(रोते हुए) श्राप नयों चले जाएँ? हम ही <sup>चर्त</sup> जाएँगे। (भर्राई हुई आवाज में नौकर को श्रावाज देती है) रामलस्न श्री रामलसन!

रामलखन—जी वीबीजी। (प्रवेश करता है) श्रीमती सेठ—जाग्री। जाकर तांगा ले ग्राग्री। मैं मायके जाऊँगी

(तेजी से यक्चे को लेकर चली जाती है। दरवाजा जोर से बन्द होता है।)

मि० सेठ-वेवकूफ।

(आरामकुर्सी पर बैठकर दौगें तस्तपोश पर रख देते हैं और पीछे को लेट कर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलीकोन की घण्टी बजती है।)

मि० सेठ—(वहाँ से चौंगा उठा कर ककंश स्वर में) हेलो, हेलो । महीं, यह ३८१२ है, गलत नम्बर है। (बेजारी में चाँगा रख देते हैं) इंडियट्स। (टेलोफोन की घंटी फिर बजती है, चौंगा उठाकर और भी फर्कंश स्वर में) हेलो । हेलो ।

कौन ? श्रीमती सरला देवो । (उठकर बैठते हैं । चेहरे पर मृदुलता घौर श्रावाज में माधुर्य आ जाता है) माफ क:जिएगा, में जरा परेशान हूँ । गुनाइए, तबीयत तो ठीक है ?

#### ( पॉज )

( दीर्घ निःश्वास छोड़ कर ) में भी लावकी कृपा से श्रव्छा हूँ। मुनाइए, श्रापके महिला-समाज ने बया पास किया है? में भी कुछ ग्राशा रख़ँ या नहीं?

#### (पॉज)

में धापका घटयन्त भाभारी हूँ, अत्यन्त भाभारी हूँ। श्राप निश्चय राग्यें, मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के धिकारों का मुक्त से बेह्तर रक्षक श्रापको बतंमान उम्मीदवारों में करी गजर न श्राएगा।.....

( पर्दा गिरता है ),

# हिरकुष्ण 'प्रेमीं'

हिरकृष्ण 'प्रेमी' हिन्दी के एक लब्ध-प्रतिष्ठ नाटककार हैं जिनका व्यक्तिस्व राजनीतिक जयल-पुथल तथा देश-सेवा की प्रवृत्तियों से हुआ है। इस प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव प्रेमी जी की रचनाओं पर दिखाई देता है और संक्रमणकालीन परिणामों की धपेक्षा हमें श्रवस्य करनी चाहिए। जिस प्रकार का रूप रीतिकालीन रचनाओं में दिखायी देता है, ठीक उसी प्रकार का रूप प्रेमी जी की भावनाओं में दिखायी पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप उनकी श्रद्धार की प्रवृत्ति राजनीति तथा नैतिकता के रंग में रंग कर धायी है। इसी कारण कहा जा सकता है कि प्रेमी जी के नाटकों में प्रतिपादित नैतिक धादर्शवाद उनकी श्रपनी विशेषता है।

यदि प्रेमी जी की समस्त कृतियों की एक साथ रखकर देखा जाय सो हमें उनमें मूलतः दो प्रवृत्तियों मिलती हैं; एक का सम्बन्ध राष्ट्रीय नविनर्माण से है श्रीर दूसरी का नैतिक श्रादशंवाद से । इन प्रवृत्तियों के निए प्रेमी जी ने यथार्थ की उपेक्षा नहीं की है । समस्याश्रों को सामने रखने का प्रयास करते हुए नाटककार प्रेमी ने श्रादशों मुख नैतिकता की घोर मकेत किया है । साथ ही, यह भी कहा जा सकता है कि नाटक कार की पेनी हिष्ट समाज के श्रन्तस्त्रन तक पहुँचकर एक सस्य की योज करना चाहती है जो किसी न किसी प्रकार राष्ट्र-निर्माण श्रीर नैतिकता में गंत्रीया गया हो । स्पाट है कि प्रेमी जी के एकांकियों पर गांधीवाद का श्रमाव परिनदित्त होता है । नाटककार प्रेमी जहां उपदेशक का रूप निता है वहां भी उसका नंयम बना हुशा है घीर उपदेशों को वहें ही यन्तातमक खंग ने प्रस्तुत किया गया है ।

प्रेमी की एकांकी-कला नमें युग की देन है। अपने एकांकियों में प्रेमी जी ने प्रारम्भ में जूनना तथा पात्र-परिनय दिया है। एकांकी के विकाय-अस धोर गति का रूप भी बहुत ही निरार कर उनके नाटकों में श्रीर प्रागीरदार मेवाटी भंडे के नीने से हट गये है, उन्हें उसी के नीन आना चाहिए। बुँटा राज्य भी नदा ने मेवाड़ के श्राधित...

राय हेमू —वूंदी राज्य भदा ने मेयाड़ के आश्रित ! यह तुम यया कहते हो, अभयनिह जी ? स्वर्गीय महाराज पृथ्वीराज के वंशजो को गहलीत राजपूत अपना गुलाम बनाना चाहते हैं। अभयनिह जी किय महाराणा ने हमारे पूर्वजों को वृंदी का पट्टा दिया था?

ग्रमयसिष्ट - पट्टा तो जायद नहीं दिया लेकिन श्राप बता सकते हैं कि उन्होंने कैसे इस पठार पर घपना श्रविकार जमाया है ?

राब हेमू —हमारे कुल-गीर स्वर्गीय देविनह की तीनी तलवार ने इस पर्वतमाला पर बगने वाले मीनो और भीनों को अपने कायू में करके उनसे इस देश को छीना है। मेवाड़ के सेनापित ! मेवाड़ के पट्टे ने नही, प्रलयकर शंकर के अवनार देविनह हाड़ा के पुरुपार्थ ने हाड़ा-यंग को इस भूमि का स्वामी बनावा है। हाड़ा-यंग किसी की गुलामी स्वीकार गहीं करेगा। चाहे यह विदेशी शक्ति हो,चाहे वह मेवाड़ का महाराणा हो।

अभयसिंह — किन्तु. वया आज तक हाड़ा राव, दशहरे श्रीर होती के उत्सवों में नित्तौड़ जाकर महाराग्या के प्रति भ्रवनी श्रद्धा श्रीर भक्ति के फूल नहीं चढ़ाते रहे ?

राव हेसू — केवल श्रद्धा थीर भिक्त के फूल ही नहीं मेवाड़ की मानरक्षा में अपने लोह का अध्यें भी चढ़ाते रहे हैं, प्राणों की बिल भी देते रहें हैं। अभयसिंह — तो आज आपको महाराणा की श्रयीनता स्वीकार करने में आपित ही क्या है ?

राव हेमू — यह था एक बीर राजपूत का दूसरे राजपूत के प्रति स्नेह का आदान-प्रदान । मेवाइ के सीमोदिया-बंदा के प्रति बूँदी के जीहानवंशीय हाडाओं का प्रेम-भाव श्रस्वाभाविक नहीं है । पृथ्वीराज के भी पहले ने सीसोदिया श्रीर चौहान देश श्रीर जाति की मान-रक्ता में रक्त का नंगम करते रहे हैं । दो वंदों की रक्त-घाराओं के संगम ने नीच- ऊँच की भावनाओं को नष्ट कर दिया था । श्राज महाराणा न जाने किस के बहुकाने में श्राकर एक वेसुरी तान श्रलापने लगे है । सेनापित, श्राप तो समभदार हैं, महारागा को समभाइए ।

श्रभयसिह—सममाऊँ तो तव, जब स्वयं समर्भू । मैं तो यह जानता हूँ कि राजपूतों को एक सूत्र में गूँथे जाने की बड़ी आवश्यकता है और जो व्यक्ति यह माला तैयार करने की शक्ति रखता है, वह है महाराणा लाखा ।

राव हेमू — शक्ति की वात न छेड़ो, अभयसिंह। प्रत्यंक राजपूत को अपनी शक्ति पर नाज है। इतने वड़े दंभ को मेवाड़ अपने प्राणों में आश्रय न दे, इसी में उसका कल्याण है। रह गई बात एक माला में गूंथने की, सो वह माला तो बनी हुई है। यह मेवाड़ का दृष्टि दोप है कि वह उसे देख नहीं पा रहा है। हाँ, उस माला को तोड़ने का श्रीगरोश श्रव हो गया है।

ग्रभयसिह—तो मेरा यहाँ तक श्राना व्यर्थ हुश्रा ? श्राप महाराणा लाया की श्राज्ञा को.....

राव हेमू—श्राज्ञा ? हाड़ा ग्राज्ञा के नाम से चिढ़ता है। अभवसिह—किन्तु श्रनुशासन का श्रभाव हमारे देश के दुकड़े किए हुए है।

राय हेमू — प्रेम का अनुशासन मानने को हाड़ा-वंश सदा तैयार है, शिक्त का नहीं। मेवाड़ के महाराणा को यदि अपने ही जाति भाइयों पर अपनी तत्यार आजमाने की इच्छा हुई है तो उससे उन्हें कोई नहीं रोक सकता। बूंदी स्वतन्त्र राज्य है श्रीर स्वतन्त्र रह कर वह महाराणाओं का शादर करता रह सकता है। अधीन होकर किसी की सेवा करना वह पसन्य नहीं करता।

#### (नेपध्य में गान)

कभी न प्रपनी आन गंवाना।

नुम हो सम्मि पुत्र प्रभिमानी, दृदय तुम्हारा है नूफानी, तुमने भय मे हार न मानी,

> कभी न जाना सीस भुकाना। कभी न श्रपनी मान गंवाना।

पाली है प्राणों में ज्वाला, राजपूत रहा मद मतवाला, कव बंधन से बंधने वाला?

> चाहे श्रपनी जान गवाना। कभी न श्रपनी श्रान गंवाना।

गौरवहीन न जीवन जीना, चाहे पड़े गरल भी पीना, चाहे छलनी होवे सीना,

पर न दासता को श्रपनाना। कभी न श्रपनी श्रान गंवाना।

राव हेमू — सुनते हो श्रभयसिंह। कोई क्या गा रहा है ? यह है राजपूत के जीवन का मन्त्र। श्राप मेवाड़ियों को यह बात नये सिरे से समभानी न होगी। श्राप महाराणा को समभाएँ कि जिस धातु से मेवाड़ियों की तलवार बनी है उसी से बूँदी के हाड़ाश्रों की भी।

अभयसिह—यह देश का दुर्भाग्य है कि...

( गाते-गाते चारस्गी का प्रवेश )

चारगी-- इक क्यों गये ? मेवाड़ के सेनापित क्या कहते है, मैं भी ' तो सुनूं ?

अभयसिह—ये राजनीतिक वाते है, चारणी । तुम अपना गीत गाए जाओ, राजपूतों के हृदयों में आग लगाए जाओ । ये राजनीति के चयकर तुम्हारी सीमा के वाहर है ।

चारगी—राजनीति । हः हः हः । वह हमारी सीमा के वाहर है । वह केवल राजाओं की है । वह दिन ग्राएगा सेनापित, जब राजनीति का उदय साधारण जनता में से होगा । मैंने सुना था मेबाड़ के सेनापित यहाँ ग्राये हैं, इसीलिए दर्शन करने चली ग्राई थी ग्रीर यह जानने भी कि इस समय, जब देश का वातावरण शान्त है, दो राजशक्तियों में क्या ग्रिमिसि हो रही है ।

राव हेमू — कुछ नहीं देवि, वड़े मगर छोटों को हजम कर जाना चाहते हैं। चारणी तुम जो गीत गा रही थी, उसमें राजपूत के जीवन का मूल मन्त्र प्रतिष्ट्रवित हो रहा था। तुम्हारे इस गीत को सार्थक करने का समय मानो ब्रा रहा है। चारणी, नृम हाड़ाब्रों के प्राणों की ब्राग मुक्तगाब्रो।

चारणी—किन्तु, मेरे निए तो हाड़ा और गहनीत दोनों बरावर हैं।

राव हेमू — फिर न्याय श्रीर अन्याय तो देखना होता है। श्राज मेवाड़ का यूँदी पर कोप हुआ है। राजपूत की तलवार राजपूत के खून की प्यासी हुई है।

चारणी--- गर्बनाच ! महाकाल की जो मर्जी । यह भयंकर दुर्घटना भी कल्यागुकारी सिद्ध हो ।

( प्रस्यान )

अभयसिह—तो मैं जाऊँ ? राव हेमू—ग्रापकी इच्छा।

> [ दोनों का दो तरफ प्रस्थान ] यट-परियर्तन

### दूसरा हश्य

स्थान-चित्तौड़ का राजमहल । महाराणा लाखा बहुन चिन्तित भीर व्यक्ति अयस्या में कमरे में टहल रहे हैं।

लाखा— मेवाए के भीरवपूर्ण एतिहान में मैंने कर्लक का टीका लगाया है। यह बात नहीं कि मीसोदियावंशियों ने मभी पराजय का मुख देखा ही नहीं लेकिन उनकी पराजय भी विजय ने ध्रियक उज्ज्वल होती रही है। ध्रमाउद्दीन की विसीष्ट-विजय की घटना एस बात का प्रयत प्रमाण है। किन्तु इस बार मुट्टी भर हाश्चयों ने हम सोगों की जिस प्रकार पराजित और विकल किया उनसे नेवाह के धारम-गौर्य को कितनी टेन पहेंची है, मेरा ही धन्तकरण जानता है।

(अभयांतह का प्रवेश घीर महाराणा की श्रीभवादन करना)

भ्रमपतिह—महाराणाजी ! वरवार के सभामद भ्रापके दर्शन पाने को उत्सुर हैं। महाराणा—सेनापित धभयिमह जी ! श्राज मैं दरवार में नहीं जाऊँगा। श्राप जानते है कि जब से हमें नीमेरा के मैदान में चूंदी के राव हेमू से पराजित होकर भाग धाना पड़ा, तभी से मेरी धारमा मुफें धिनकार रही है। वाष्पा रावल धौर वीरवर हमीर का रक्त जिसकी धमनियों में वह रहा हो वह प्राणों के भय में रणक्षेत्र से भाग धाए यह कितने कलंक की बात है ?

स्रभयसिह— किन्तु, जरा सी बात के लिए श्राप इतना श्रमुताप वयों करते हैं, महाराणा ! हाड़ाश्रों ने रात के समय श्रचानक हमारे शिविर पर आक्रमण कर दिया । उस समय प्राकस्मिक धावे से घवरा कर हमारे सैनिक भाग लड़े हुए । श्राप तो तब भी प्राणों पर गेल कर राव हेमू से लोहा लेना चाहते थे किन्तु हमीं लोग श्रापको वहाँ से खींच लाये । इसमें श्रापका क्या श्रपराध है श्रीर इसमें मैवाड़ के गौरव में कमी श्राने का कीन सा कारण है ?

महाराएा— जिनकी खाल मोटी होती है, उनके लिए किसी भी वात में कोई भी श्रपया, कलंक या श्रपमान का कारएा नहीं होता ! किन्तु जो श्रान को प्राणों से बढ़ कर समभते थाये हैं, जिनका इतिहास पुकार-पुकार कर कह रहा है कि श्रपमान भरे थुग से थात्म-सम्मान-पूर्ण क्षण श्रिषक श्रेयस्कर है, जिनकी पच्चीस-पच्चीस हजार महिलाएँ देश श्रीर जाति की मान-रक्षा के लिए एकबारगी जाहर की ज्वाला में जल कर मरण को ध्रमर कर गयी है, वे पराजय का मुख देख कर भी जीवित रहें यह कैसी उपहासजनक वात है! सुनो, श्रभयसिंह जी! मैं भ्रपने मस्तक से इस कलंक के टीके को घो डालना चाहता हूँ!

अभयसिह—मेवाड़ के सैनिक ग्रापकी ग्राज्ञा पर ग्रपने प्राणों की बित देने को प्रस्तुत हैं।

महारागा जनके पुरुषार्थ की परीक्षा का दिन आ पहुँचा है। मैं महारावल वाप्पा का वंशज प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक बूंदी के दुर्ग में सम्मन्य प्रवेश नहीं करूँगा, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। बूंदी के दुर्ग पर जब तक मेवाड़ की पताका नहीं फहराएगी, तब तक पानी की एक बूंद भी गले के नीचे उतारना मेरे लिए गौहत्या के समान होगा।

भ्रमर्पातह - महाराणा ! छोटे से वृंदी दुर्ग की विजय करने के लिए इतनी वड़ी प्रतिज्ञा करने की क्या भावश्यकता है ? बुंदी को उसकी धृष्टता के लिए दण्ड तो दिया ही जाएगा, लेकिन हाड़ा लोग कितने वीर हैं। चौहानों का इतिहास उनके प्राणों को उत्तेजित करता रहता है, युद्ध करने में यम से भी वे नहीं डरते । वे बद्यपि संस्या में कम हैं किन्तु अपने पहाड़ी प्रदेश में खूब सुरक्षित है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रन्तिम विजय हमारी होगी, किन्तु यह निरचयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसमें कितने दिन नग जाएँगे। इसलिए ऐसी भीषण प्रतिज्ञा श्राप न करें। सम्पूर्ण मेवाइ श्रापके इद्यारे पर मरने-जीने के लिए प्रस्तुत है। ग्रापके प्राणों का मूल्य उसे स्वर्ग सिहासन से भी श्रीधक है, कुबेर के धन से भी ज्यादा है। श्रापकी इस प्रतिज्ञा की बात सुन कर सब जगह प्रशान्ति के बादल छा जाएँगे श्रीर दो राजपूत बंशों में जो भगंकर वैमनस्य की ज्वाला जल उटेगी वह बुकाए न बुकेगी, घौर उसका लाभ उठाएँगे विदेशी लोग, भारतीय सम्यता के शत्रु 🎼 इसनिए श्राप से मेरा नम्न निवेदन है कि श्राप मेयाड़ पर दया करके, गहलीत-वंश पर तरस लाकर, राजपूत-जाति के हित-साधन के लिए भीर भारतीय स्वतन्त्रता की मंगल कामना के लिए अपनी यळोर प्रतिज्ञा की यापिस के लें।

महाराखा— प्राप यह क्या कहते हैं, सेनापित । क्या कभी धारने मुना है कि मूर्य-वंघ में पैदा होने याने पुरुप ने अपनी प्रतिशा को वापिस लिया है ? महाराजा दशरथ का जदाहरण हम नोगों के सामने हैं ! "पाण जाय पर यत्तन न जाही" यह हमारे जीवन का मूलमन्य है ! जो तीर तरकस में निकल कर, कमान पर जह कर, छूट गया उसे बीच में ही नहीं लौटाया जा सकता । मेरी प्रतिशा कटिनाई ने पूरी होगी, यह मैं जानना हैं और इस बात की हाल के मुख में पुष्टि भी हो खुकी है कि हाहा-शांत बीरता में हम लोगों की छपेशा किनी प्रवार हीन नहीं है, शिर भी महाराजा लाला की प्रतिशा पास्तव में प्रतिगा है यह पूर्व होगी नाहिए।

(नपय्य म गान)

तोड़ मोतियों की मत माला ।

ये सागर से रत्न निकाले,
युग-युग से है गये सम्हाने ।
टनसे दुनियों में उजियाला ।
तोड़ मोतियों की गत माला ।

ये छाती में छेद करा कर,
एक हुए है हृदय मिला कर,
डममें व्ययं भेद क्यों डाला ?
तोड़ मोतियों की मत माला !

मा का मान इसी माना से। बच रे हृदय द्वेप ज्वाला से। कर ने पान प्रेम का प्याला। तोड मोतियों की मत माला।

इनमें कोई नहीं बड़ा है। विधि ने इनको स्वयं घड़ा है। तू वयों बनता है मतवाला ? तोड़ मोतियों की. मत माला। (गाते-गाते चारसों का प्रवेश)

महारागा — तुम गा रही थी, चारणी ? तुम सम्पूर्ण राजस्थान को एकता की श्रृह्मला में बांध कर देश की स्वाधीनता के लिए कुछ करने का आदेश दे रही थी, किन्तु में तो उस श्रृह्मला को तोड़ने जा रहा हूँ। दो ग्रान वाली जातियों में जानी दुश्मनी पैदा करने जा रहा हूँ।

चारणी— यह श्राप वया कहते हैं, महाराज ? श्रापकी विवेकशीलता पर सब की विश्वास है। जिस दिन सेनापित श्रमयिंसह बूँदी के राव के पास मेवाड़ की श्रयीनता स्वीकार करने का संदेशा सेकर पहुँचे थे, उसी दिन मेंने उन्हें सचेत किया था। उसके वाद जब मेवाड़ी सेना पराजित होकर लौट श्राई तो मैंने समफ लिया कि मेवाड़ श्रौर बूँदी

महारागा—क्यों न बनता। निस्मन्देह यह ठीक बूँदी हुनं की हुबहु नकल है। श्रच्छा श्रव इन पर चढ़ाई करने का गेल सेला आय। इस मिट्टी के दुने को मिट्टी में मिलाने में मेरी श्रात्मा को मंतीय तो नहीं होगा, लेकिन श्रपमान की वेदना में, दर्प की तरंग में, प्रतिहिंसा के श्रादेग में, जो विवेकहीन प्रतिशा मैंने कर दाली थी उससे छुटकारा तो मिल ही जाएगा। उसके बाद फिर ठंटे दिमाग से सोचना होगा कि बूँदी को मेवाड़ की श्रधीनता स्वीकार करने के लिए किस तरह बाध्य किया जाए। श्राज तक ऐना नहीं हुआ कि मेवाड़ के महाराणामों की मनीकामनाएँ पूरी हुए बिना रह गयी हों।

श्रभयसिंह—निश्नय ही महाराज। बीझ ही बूँदी के पठारों पर सीसोदियों का सिंहनाद होगा। अच्छा, श्रव हम लोग श्राज के रण की सैयारी करें।

महाराणा—किन्तु यह रण होगा किस से ? इस दुर्ग में कोई तो हमारा पथ प्रतिरोध करने वाला होना चाहिए ?

अभयसिंह—हाँ, वेल में भी कुछ तो वास्तविकता आनी चाहिए। मैंने सोचा है कि दुनें के भीतर अपने ही कुछ सैनिक रस दियें जाएँगे जो वन्द्रकों से हम लोगों पर छूँ है बार करेंगे। कुछ घंटे ऐसा ही येल होगा और फिर यह मिट्टी का दुगं मिट्टी में मिला दिया जाएगा। अच्छा, अब हम चलें।

(दोनों का प्रस्थान और वीरसिंह का कुछ साथियों के साथ प्रवेश) वीरसिंह—मेरे वहादुर साथियो। तुम देख रहे हो कि हमारे सामने यह कीन सी इमारत बनाई गयी है?

पहला सायी—हाँ, सरदार, यह हमारी जन्म-भूमि बूंदी का दुर्ग है।

वीर्रासह—श्रीर तुम जानते हो कि महाराणा श्राज इस गढ़ को जीत कर श्रपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं किन्तु क्या हम लोग श्रपनी जन्म-भूमि का श्रपमान होने देंगे ? यह हमारे वंदा के मान का मन्दिर है। क्या हम इसे मिट्टी में मिलने देंगे ?

दूसरा सायी-किन्तु यह तो नकली बूँदी है।

यीरींगह—धिकार है तुम्हें ? नकली चूंदी भी हमें प्राणों से श्रिष्ठ प्रिय है। महाराणा ने सोचा होगा, यहाँ से चूंदी साठ कोस दूर है। यूंटी के राव को उनके इस श्रपमान का पता भी नहीं तम पाएगा। सीसोदिया सैनिक लिलोने की तरह इस मिट्टी के गढ़ को मिट्टी में मिला देगे किन्तु जिस जगह एक भी हाड़ा है वहाँ धानानी से चूंदी का श्रपमान नहीं किया जा सकता। श्राज महाराणा आइचर्य के साथ देखेंगे कि यह नेव केवल पेत ही नहीं रहेगा, यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि सीसोदियों के श्रीर हाड़ाधों के खून से लाल हो जाएगी।

तीसरा साथी — लेकिन सरदार, हम लोग महाराए। के नीकर हैं। प्या गहाराणा के विरुद्ध तलवार उठाना हमारे लिए उचित है ? हमारा हाए-पौग महाराणा के नमक से बना है। हमे उनकी इच्छा में व्याघात व्यो पहेंचाना चाहिए।

विरितिह — और जिस जन्मभूमि की धूल में केल कर हम वर्गे हुए है जसका अपमान भी कैसे सहन किया जा सकता है ? हम महाराणा में नौकर है तो क्या हमने अपनी आत्मा भी जन्हें बेच दी है ? जब कभी मैचाद की स्वसन्यता पर आक्रमण हुआ है, हमारी तलवार ने जनके नमक का बदला दिया है । और जब तक इन हाथों में तलवार पकरने की सिक्त रहेगी वे मैचाइ की मान-रक्षा के लिए प्रयत्नशीन रहेंगे, विक्ति जब मैचाइ घौर बूँबी के बान का प्रश्न आएगा हम जुपवाप मैचाइ की दी हुई तलवार महाराए। के चरणों पर रम कर बिटा के सेंगे और बूँबी की और में अपने प्राणों की बिल देंगे। आज ऐसा ही अवनर सा पड़ा है।

पहला सापी—निन्धय ही यहाँ पर बूँधी है यहाँ पर हाड़ा है और यहाँ पर हाड़ा है वहाँ पर बूँधी है। फोर्च नवली बूँधी का भी अपमान नहीं कर गयता है। जन्म-भूमि हमें आजों से भी अभिक प्रिय है। हाइा-बंध फोलाद से बना है। काज महाराष्ट्रा को छन मिट्टी की बीयारों का सामना नहीं करना पड़ेगा, यहिल हाइडाओं की बाय देह का सामना करना पड़ेगा।

बीर्रामह-निज्यम ही। हम लीव मंग्या में बहुत कम है घीर

हमारे पास तोषों का मुकावला करने के लिए उपयुक्त साधन भी नहीं है। हमारे पाम केवल धपने प्राण हैं धीर उन प्राणों को जन्म-भूमि की मान-रक्षा के लिए चढ़ा देने की धदम्य चाह है। संसार देनेगा कि हम ध्रान्त की सन्तानें ध्रपने प्राणों में कितनी ध्राग लिए हुए हैं। हम बुभते हुए दीवक की तरह भभककर ध्रम्यकार में मिल जाएँगे। हम बिजली की तरह कड़क कर, चमक कर, ध्राकाय का हृदय चीरते हुए पृथ्वी के ध्रन्तस्तल में अपनी स्मृति की दरार को छोड़कर ध्रन्तध्र्यांन हो जाएँगे। ध्रच्छा, ध्रव ध्रपनी जन्म-भूमि को प्रणाम करों।

(सब दुर्ग के द्वार पर मस्तक भुकाते हैं)

वीर्रांसह—मेरे बीनो, तुम ग्राग्न-ग्रुल के अंगारे हो। ग्रपने बंघ की ग्राभा को क्षीण न होने देना। प्रतिज्ञा करो कि प्राणों के रहते हम इस नकती दुर्ग पर मंबाड़ की राज्य-पताका को स्थापित न होने देंगे।

सब लोग-हग प्रतिज्ञा करते है कि प्राणों के रहने इस हुगें पर भेवाड़ की घ्वजा न फहराने देंगे।

वीर्रोसह—मुक्ते आप लोगों पर घिममान है ग्रीर बूंदी श्राप जैसे पुत्रों को पाकर फूर्ली नहीं समाती। यह नकवी बूंदी दुगं भी हमारे भावी बिलदान को कल्पना की ग्रांतों से देख कर मुस्करा रहा है ग्रीर जिस बूंदी में ऐसे मान के घनी पैवा होते हैं, उस पर संसार श्रद्धा के फूल बरसा रहा है। चलो, हम दुगं-रक्षा की तैयारी करें।

> (सव का प्रस्थान) पर-परिवर्तन

### चौथा दृश्य

स्यान—नकली बूँदी दुर्ग का धन्द द्वार । महाराणा लाखा श्रीर अभयसिंह का प्रवेश ।

महाराएगा—सूर्य हुवने को प्राया। नकली दुर्ग के ग्रास-पास की भूमि वैसी ही लाल हो उठी है, जैसा कि ग्राकाश का पश्चिमी छीर हो रहा है। यह कितनी लज्जा की वात है कि हमारी सेना नकली वूँदी के दुर्ग पर ग्रपना भंडा स्थापित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर

सकी। वीरसिंह श्रीर उसके मुट्टी भर साथी श्रभी तक वीरतापूर्वक लड़ रहे हैं।

अभयसिंह — हाँ, महाराणा, हम तो समभते थे कि घड़ी दी घड़ी में यह ऐत नतम हो जायगा लेकिन हमें भाशा के विरुद्ध हुं छे वारों का मुकावला करने के बजाय हाड़ाओं के श्रचूक निशानों का सामना करना पड़ा। यद्यपि ये लोग गिनती में थोड़े हैं किन्तु इन्होंने दीवारों की धाड़ में जपमुक्त स्थान बना कर हम पर गोली और वीर यरसाना प्रारम्भ कर दिया है। हमारो सेना इन श्रचितित और शाकिमक प्रहारों से भौजवकी हो गयी है। श्रव दुनं के भीतर के हाड़ाओं की युद्ध-तामग्री रामाप्त हो गयी है। धापकी प्रतिज्ञा पूरी होने में कुछ ही धणों का विलम्य है। दुनं की दीवारों में जहां-तहां छेद हो गये है और वे घरा-शायी होने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

महाराएग—यह भी प्रच्छा ही हुथा कि हमारे एउ वेल में भी कुछ यास्तिविकता था गयी। यदि हमें बिना कुछ पराक्षम दिखाए ही दुगे पर अपना शण्डा पहराने का ध्रवसर मिल जाता, तो मुक्ते जरा भी नन्तोप न होता। श्रीर नच पूछो तो पीरसिंह की बीरता देख कर मुक्ते बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं चाहता या ऐसे बीर के प्राणों की किसी प्रकार ख्या ही सकती।

अभवसिह—मैंने जब हुने से प्रानि-वर्षा होते देशी तब मुने भी
कुछ ग्रास्तर्य हुण घौर मैंने सहेद सण्डी प्रत्य कर युद्ध को कुछ देर के
लिए रोक दिया। उनके परणात में स्वयं दुर्ग में गया। मैंने वीरसिह
की उसके साहस के लिए प्रयंगा की घौर उनने प्रमुरोप किया कि तुम
एम व्यर्थ प्रयास में घपने प्राण न गोछी। तुम महाराणा के नौकर हो,
तुम्हें उनके विरुद्ध हिवसर उठाना नहीं चाहिए। किन्तु उनने उत्तर
दिया कि महाराणा ने हाइएओं को चुनोती दी है। हम उन चुनौती का
उत्तर देने को मजबूर है। या सो जन्मभूमि घौर कुन के मान की रक्षा
में हमें प्राणी की धनि देनी होकी, या महाराणा को एम विदेव होत
प्रतिका से विनुध होना पड़ेगा। घव सीनरा कोई रास्ता नमें। यदि
महाराणा हमारे प्राण कना चाहने है तो गुमी से दे वें। वेतिन हम

इतने कायर, निलंज्ज और निष्प्राण नहीं हैं कि भ्रपनों भ्रांखों से वूँदी का भ्रपमान होते हुए देखें। मेवाड़ में जब तक एक भी हाड़ा है, नकली बूँदी पर भी बूँदी की ही पताका फहराएगी।

महाराणा— निश्चय ही इन वीरों का जन्म-भूमि के प्रति श्रादर-भाव सराहनीय है। यह में जानता हूँ कि इन लोगों के प्राणों की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं। इतने बहुमूल्य प्राण लेकर भी मुभें श्रपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी होगी। वह देखो दुगें की उस दरार में खड़ा हुआ वीरसिंह कितनी फुर्ती से वाण-वर्षा कर रहा है। श्रकेला ही हमारे सैकड़ों सैनिकों की टोली को श्रागे वढ़ने से रोके हुए है। धन्य हैं ऐसे वीर! घन्य है वह माँ जिसने ऐसे वीर पुत्रों को जन्म दिया! घन्य है वह भूमि जहाँ पर ऐसे सिंह पैदा होते हैं!

#### (नेपय्य में गान)

बह देखो नभ मुसकाता है। चले गये मां के दीवाने,

स्वर्ग लोक में राज्य जमाने, जग गाता है उसके गाने

जो निज शीश चढ़ाता है, नह देखो नभ मुसकाता है।

जिसकी तलवारों का पानी लिखता है उन्मत्त कहानी, उसकी होती धमर जवानी—

> जो मां पर मिट जाता है। वह देखो नभ मुसकाता है।

चले गये जिनको था जाना, लगा हुन्ना है आना जाना, पर जाना भी श्रमर वनाना,

> विरला ही सिखलाता है, वह देखो नभ मुसकाता है।

#### (जोर का धमाका और प्रकाश होता है)

महारासा—वह देखो ग्रभयसिंह, गोले के वार से वीरसिंह के प्राण-पर्येक उट्ट गये। बूँदी के मतबाले निपाही सदा के लिए सो गये। भ्रव हम विजय-श्री प्राप्त कर सके। जाग्रो, दुर्ग पर मेवाट की पताका फहराश्रो श्रीर वीरसिंह के शव को यादर के साथ यहाँ पहुँचाग्रो।

#### (ग्रनयसिंह का प्रस्थान)

महाराणा—ग्राज इस विजय में मेरी सबसे बड़ी पराजय छिपी हुई है। व्यर्थ के दम्भ ने भ्राज कितने ही निर्दोष प्राणों की विन ले सी। (गाते-गाते चारणों का प्रवेदा)

चारणी— वह देशो नम मुगकाता है ! महाराणा । श्रव तो श्रापकी श्रातमा को शान्ति मिल गई होगी । श्रव श्रापने श्रवने माथे से कलंक का टीका थो डाला । यह देखों, बूँबी के दुगें पर मेवाड़ के सेनापित विजय-पताका पहरा रहे हैं । यह मुनिए, मेवाड़ की सेना में विजय-दुन्दुभी वज रही है ।

महाराणा—चारणी ! नयों तुम इस परचाताप से विकल प्राणों को छीर पुत्ती कर रही हो। न जाने किस बुरी साइत में मैंने बूंदी को प्रपने प्रधीन करने का निरचय किया था। मैंने अपने उस निरचय को वहीं क्यों न समाप्त कर दिया जहां कि मेवाड़ी सेना यूंदी की सेना से पराजित होकर जापिस औट आई थी। बीरितिह की घीरता ने मेरे हृदय के द्वार खोल दिये हैं, मेरी आंदों का पर्दा हटा दिया है? मैं देखता हैं ऐसी बीर जाति को अधीन करने की अभिलाध करना पामनपन है, वैसा ही पामनपन जैसा कि अलाउद्दीन रिल्को की मेवाड़ियों को अपना गुनाम बनाने की लालता में था।

चारणी— सी गमा महाराणा, इस नकली दुर्ग की पान्तवंजनक प्रभूतपूर्व स्वर्ण घटना के चाद भी मेवाड़ श्रीर बूंडी के मन मिलाने का कोई रास्ता नहीं निकल गकता?

(बीरसिंह के दाव के साथ अभयसिंह का प्रवेदा, दाव को रायकर दाव उठाने वाले चले जाते हैं।)

महाराणा—चारणी, इस शहीद के चरणों के पाम धेंट कर (शब

के पास बैठते हैं) में अपने अपराध के लिए क्षमा मौगता हूँ किन्तु क्या बूंदी के राव तथा हाड़ा-वंदा का प्रत्येक राजपूत आज की इस दुर्घटना को भूल सकेगा?

#### (राव हेमू का प्रवेश)

राव हेमू—क्यों नही महाराणा। हम गुग-युग से एक हैं श्रीर एक रहेंगे। श्रापको यह जानने की श्रावय्यकता थी कि राजपूतों में न कोई राजा है, न कोई महाराजा। यब देश, जाति श्रीर वंश की मान-रक्षा के लिए प्राण देने कृति सिपाही हैं। हमारी तलवार श्रपने ही स्वजनों पर न उठनी चाहिए। बूंदी के हाड़ा सुस और दुःस में सदा चित्तीड़ के सीसीदियों के साथ रहे हैं श्रीर रहेगे। हम सब राजपूत श्रान के पुत्र हैं। हम सब के हदय में एक ही ज्वाला जल रही है। हम कैसे एक दूसरे से पृथक हो नकने हैं। बीरसिंह के चित्रान ने हमें जन्मभूमि का मान करना सिखाया है।

महाराह्मा — निब्चय ही महाराज । श्राग्रो, हम सम्पूर्ण राजपूत जाति की स्रोर से इम श्रमर श्रात्मा के श्रागे श्रपना मस्तक भुकाएँ। (तय बैठकर वीरसिंह के दाव के आगे भुकते हैं)

पटाक्षेप

# सेठ गोविन्ददास

समस्याओं को नेकर हिन्दी एकांकी क्षेत्र मे आने वाले नाटकवारी में सेट गोविन्दास का नाम दूसरे स्थान पर आता है। गोविन्दास जी के एकांकी के पीछे देणी-विदेशी माहित्य का श्रध्ययन भीर अनुकरण स्पष्ट बोनता रहता है, जिसके माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना के स्पर, राजनीतिक चेतना तथा सामाजिकता की पुकार प्रतिधानित हो उठी है।

सेठ जी ने अपनी कथावस्तु के लिए इतिहास, पुराग एवं ममाज को लिया है। ऐतिहासिक तथा पीरागिक एकांकी नाटकों ने आप भारतीय नंस्कृति के हिमायती हैं और सामाजिक नाटकों में राजनीति का प्रभाव स्पष्ट हो गया है। इसका कारण गांधीवादी विचारधारा तथा देश की परिस्थिति मात्र कहा जा सकता है। माथ ही गामाजिक एकाकी नाटकों में सेठ जी ने उच्च मध्यदर्ग को वेन्द्र बनाकर नैतिकता, चरित्र और समाज की आवस्यक्ताओं की और पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। सामाजिक एवांकी नाटकों में जित-जिन पाने का निर्माण धारने किया है, उनमें अधिकांस पात्र राजनीतिक आन्दोलनों में नाए हुए व्यक्तित्व की देन मात्र है, अनुभव की देन है।

नेठ जो के नमरन एनांकियों को ६ वर्गों में निभक्त कर नकते हैं— (१) ऐतिहासिक एकाकी, (२) सामाधिक समस्या प्रधान एनांजी, (१) यमार्थ एनांकी, (४) एकपाठी एकाकी, (१) विदेशी प्रभाव बाले एकांची तथा (६) पीचाणिक एकाकी।

साहित्यार निश्चम ही उन्ही परिस्पितिमों की पेन होता है जिनके भीच से पर गुरुरता है। मेंट मोधिन्दबाम का नाट्यरार भी इसी प्रकार की देन माननी चाहिए। जिस समय ये इन क्षेत्र में क्षेत्र हैं, प्राप्त माम पारचाहम सम्बन्ध का भार भी ने भाने हैं। जिसे मनन से नंपम सक की सीड़ी पार करनी थी। समाज का नेतृत्व महात्मा गांधी कर रहे थे, जिन्हें देश के नवयुवकों की श्रावश्यकता थी—स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक के रूप में। सेठ जी को वापू की पुकार ने श्रपनी श्रोर खींच लिया पर उनके भीतर का साहित्यकार रह-रहकर विद्रोह कर उठता था श्रीर इसी के फलस्वरूप इनके सामाजिक एकांकियों की रचना हुई है। सभी सामाजिक एकांकियों में सेठ गोविन्ददास ने व्यंग्य का ग्राधार लेकर समाज का जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है।

एकांकी कला की हिण्ट से सेठ गोविन्दवास को एक सफल प्रयोगवादी एकांकीकार माना जा सकता है जिन्होंने एकांकी शिल्प-विधान तथा उसके स्वरूपों को लेकर विभिन्न प्रयोग किये है। विचारों में ग्राप प्रावर्शवादी हैं पर वैसे थोथे ग्रावर्श के प्रति ग्रापकी श्रद्धा नहीं है जो समाज और व्यक्तित्व को रास्ते पर ग्रागे ले ग्राने में सहायक न वन सके। डा० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के लिए संकलनत्रय को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है पर सेठ जी उसमें स्थलसंकलन की ग्रपेक्षा काल-संकलन पर वल देते है। यही कारण है कि सेठ जी के नाटक बहुत ही लम्बे हो गये हैं जो पाट्य तो हो सकते हैं, ग्राभनय के लिए उपयुक्त नहीं माने जा सकते। ग्रापने ग्रपने एकांकियों में उपक्रम ग्रीर उपसंहार की ग्रवतारणा की है। उनका मत है कि इनके माध्यम से एकांकी का सौन्दर्य वढ़ जाता है।

इनकी कृतियों में पतन की पराकाष्ठा, निर्दोष की रक्षा, भय का भूत, सूखे संतरे, हंगर स्ट्राइक, फाँसी, श्रिधकार लिप्सा, चौवीस घण्टे, पाप का घड़ा, प्रलय और सुष्टि, कृषियज्ञ ग्रादि उल्लेखनीय एकांकी हैं।

### शिवाजी का सच्चा स्वरूप

रथान---राजगढ़ दुर्ग की एक दालान समय---संध्या

[बाहिनी ओर दालान का फुछ हिस्सा दिखाई देता है। दालान की छत पत्यर के रांभों पर है। उसके पीछे की दीवाल भी पत्यर की ही है। दालान के पीछे की ओर दाहिनी तरफ, दूर पर, गढ़ की फसील और कुछ युजें दिल पड़ती हैं। बाई तरफ संहाद्रि-पर्वतमाला की शिलरा-यली दृष्टिगोत्तर होती है। कुछ दिएतरों की ओट में सूर्य अस्त हो रहा है, जिसके प्रकाश से सारा दृश्य आलोकित है। दालान के सामने किले का खुला मैदान है। मैदान में एक ऊँचे स्तम्भ पर भगवा रंग का मराठा भण्डा फहरा रहा है। वालान में जाजम बिछी है, उस पर कीमख्याब की गद्दी पर मसनद के सहारे शिवाजी बीरासन से किसी विचार में मन्न हैं। उनके स्पष्टन श्रीर पेप-भूषा के सम्बन्ध में पुछ भी लिएना इसलिए निरधंक है कि एक भी भारतीय ऐसा नहीं जो उससे परिचित न हो। बालान के बाहर बस्बों से गुराज्जित दी मावली बारीट-रक्षक छाड़े हुए हैं। याई ओर से मोरोपंत पिगले का प्रवेश। मोरोपंत अघंड़ ग्रवस्या का, गेंटुए वर्श का, केवा-पूरा ध्यक्ति है । वैष-भूषा शिवाली से मिलती-जुलती हैं। केवल सिर की पगड़ी में अन्तर हैं। मोरोपन की पगड़ी शियाजी की पगड़ी के सहरा मुगल हंग की न होकर मराठी तरज की है। उसकें मस्तक पर त्रियुष्ट भी है।]

मोरोपंत- (शिभवादन कर) श्रीमन्त नरकार, सेनापति सायाजी . सोमधेन गल्याम प्रान्त को जीत, वहाँ का मारा एकाना सूट कर छा पर्य है।

विषाजी—(चौक कर) छच्छा ! (मीरोपना की ओर देतपार) वैठी, पेमबा, कहा धुन मंबाद मावे। बाबाजी सोनदेव हैं कही ? मोरोपन्त-(वीरासन से बैठकर) श्रीमन्त की सेवा में श्रभी उपस्थित हो रहे हैं।

[कुछ देर निस्तब्यता। शिवाजी श्रीर मोरोपन्त दोनों उत्सुकता से वाई ओर देखते हैं। कुछ ही देर में आवाजी सोनदेव वाई ओर से श्राता हुआ दिखाई देता है। उसके पीछे हम्मालों का एक वड़ा भारी मुण्ड है। हर हम्माल के सिर पर एक एक हारा (वड़ा भारी टोकना) है। हम्मालों के मुण्ड के पीछे एक पालकी है। पालकी वन्त है। आवाजी सोनदेव भी अघेड़ श्रवस्था का ऊँचा-पूरा मनुष्य है। वेप-भूपा मोरोपन्त के सहश है। आवाजी सोनदेव दालान में श्राकर शिवाजी का अभिवादन करता है। हम्मालों का मुण्ड और पालकी वालान के वाहर रहते हैं।

शिवाजी—वैठो, ग्रावाजी, कल्यासा-विजय पर तुम्हें बवाई है। ग्रावाजी सोनदेव—(बैठते हुए) वधाई है श्रीमन्त सरकार की। शिवाजी—कहो पैदल में मावलियों ने अधिक बीरता दिखायी या हेटकरियों ने ?

ध्रावाजी सोनदेव—दोनों ने ही, श्रीमन्त सरकार । क्षियाजी—और घोड़सवारों मे वारितियों ने या चिलेदारों ने ? आवाजी सोनदेव—इनमें भी दोनों ने ही, श्रीमन्त । शिवाजी—सेना के अधिपति कैसे रहे ?

आवाजी सोनदेव —पैदल के अधिपति — नायक, हवालदार, जुमाल-दार और एक-हजारी, तथा घोड़सवारों के अधिपति — हवालदार, जुमालदार और सुभेदार, सभी का काम प्रशंसनीय रहा, श्रीमन्त सरकार।

शिवाजी—(हम्मालों की ओर देखकर मुस्कराते हुए) कत्याण का खजाना भी लूट लावे; वहुत माल मिला ?

आवाजी सोनदेव हाँ, श्रीमन्त, सारा खजाना लूट लिया गया श्रीर इतना माल मिला जितना श्रव तक की किसी लूट में भी न मिला था। चाँदी, सोना, जवाहरात, न जाने क्या-क्या मिला। मैं तो समभता हूँ, श्रीमन्त, केवल दक्षिण ही नहीं उत्तर की भी विजय इस सम्पदा से हो सकेंगी। भाषाका—(हम्माला क पाछ पालका का दर्शकर) श्रार उस मणा में नया है ?

थ्रावाजी सोनदेव—(मुस्कराते हुए) उस मेणा उस मेणा में श्रीमन्त, इस विजय का सबसे बटा तोफा है।

शिवाजी—(जत्मुकता से आवाजी सोनदेव की ग्रोर देखते हुए) ग्रंथीत ?

आयाजी सोनदेव —श्रीमन्त, कल्याण के मुभेदार श्रहमद की पुत्रवधू के सौन्दर्य का दृत कौन नहीं जानता ? उसे भी श्रीमन्त की सेवा के निए बन्दी करके साथा है।

[शियाजी की सारी प्रसन्नता एकाएक विलुप्त हो जाती है। उनकी भृगुर्टी चढ़ जाती है और नीचे का श्रोठ ऊपर के दांतों के नीचे सा जाता है। ग्रायाजी सोनदेव शियाजी की परिवर्तित मुद्रा देखकर घवड़ा सा जाता है। मोरोपंत एकटक शिवाजी की श्रोर देखता है। कुछ देर निस्तव्यता रहती है।]

विवाजी—(भर्गये हुए स्वर में), मेणा को सस्काल इस पड़बी में नाओ।

[आपाजी सोनदेय जल्बी से दालान के याहर जाता है। दिवाजी एकटक पालकी की ओर देगते हैं; मोरोपंत दिवाजी की तरक। कुछ ही क्षणों में पालकी दालान में आती है। ज्योंही पालकी दालान में रखी जाती है स्पोंही दिवाजी जल्दी से पालकी के निकट पहुँचते हैं। मोरोपंत विवाजी के पीछे-पीछे जाता है।

शियाजी-(आयाजी सीनदेप से) गोल दो मेणा, आवाजी।

[प्रावाजी सोनदेव पातकों के बरयाजे धोलता है। वरपाजे धुलते ही घहमद की पुत्र-वयू उसमें से निकल घुपचाप एक कोर सिकुड़ कर राही हो जाती है। यह परम धुन्दरी युवती है। येव-भूषा मुगल स्त्रियों के सहत है।

शिवाजी—(अहमद की पुत्रवयू से) मां, शिवा अपने निपहनानार को इस नामायून हरकत पर आपने मुखानी नाहता है। आह ! कैंगी अशीदो-गरीव सूचसूरती है, आपनी । आपनी देखनर मेरे दिन में एक सिर्फ एक बात उठ रही है-कहीं मेरी माँ में भ्रापकी सी खूबसूरती होती तो में भी वदसूरत न होकर एक खूवसूरत शख्श होता। माँ, आपकी खूबसूरती को मैं एक "सिर्फ एक काम में ला सकता हूँ - उसका हिन्दू-विधि से पूजन करूँ; उसकी इस्लामी-तरीके से इवादत करूँ। भ्राप जरा भी परेशान न हों। मां, भ्रापको आराम, इज्जत, हिफाजत, श्रीर खबरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुंचा दिया जायगा; विना देरी के, फौरन। (भ्रावाजी सोनदेव की ओर घूमकर) ग्रावाजी, तमने ऐसा काम किया है, जो कदाचित् क्षमा नहीं किया जा सकता। शिवा को जानते हुए, निकट से जानते हुए, तुम्हारा साहस ऐसा घृणित कार्य करने के लिए कैसे हुआ ? शिवा ने आज-पर्यन्त किसी मसजिद की दीवाल में वाल वरावर दरार भी न आने दी। शिवा को यदि कहीं कुरान की पुस्तक मिली तो उसने उसे सिर पर चढ़ा उसके एक पन्ने की भी किसी प्रकार की क्षति पहुंचाए विना मौलवी साहव की सेवा में भेज दिया । हिन्दू होते हुए भी शिवा के लिए इस्लाम-धर्म पूज्य है । इस्लाम के पवित्र स्थान, उसके पवित्र ग्रन्थ, सम्मान की वस्तुएँ हैं। शिवा हिन्दू श्रीर मुसलमान प्रजा में कोई भेद नहीं समभता। अरे ! उसकी सेना में मुसलिम सैनिक तक है। वह देश में हिन्दू-राज्य नहीं, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहता है। ग्रातताइयों से सत्ता का अपहरण कर उदारचेताओं के हाथों में ग्रॅंधिकार देना चाहता है। फिर पर-स्त्री--ग्ररे ! पर-स्त्री तो हरेक के लिए माता के समान है। जो ग्रधिकार-प्राप्त जन हैं, जो सरदार हैं, या राजा, उन्हें ... उन्हें तो इस सम्बन्ध में विवेक, सबसे श्रधिक विवेक रखना ब्रावश्यक है। (कुछ रुककर) ब्रावाजी, क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते थे ? इसलिए तो तुमने यह कृति नहीं की ? शिवा ये लड़ाई-भगड़े, ये लूट-पाट, क्या व्यक्तिगत सुखों के लिए कर रहा है ? न्या स्वयं चैन उड़ाना उसका उद्देश्य है ? तव तव तो ये रक्त-पात, ये लूट-मार, घृणित, अत्यन्त घृणित कृतियाँ हैं। शिवा में यदि शील नहीं, तो उसके सेनापितयों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता । फिर तो हम में भ्रौर इन्द्रिय-लोलुप लुटेरों तथा डाकुग्रों में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। अरे ! तब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु,

हमारी विजय से हमारी पराजय, कहीं श्रेयष्कर है। (मोरोपंत से) ग्राह! पेरावा, यह "यह मेरे "मेरे एक सेनापित ने "मेरे एक सेनापित ने स्था" व्या कर डाला? लज्जा से मेरा सिर ग्राज पृथ्यों में नहीं, पाताल में युसा जाता है। इस पाप का न जाने मुझे कैसा "कैसा प्रायश्चित करना पड़ेगा? (कुछ ठककर) पेरावा, इस समय तो मैं केवल एक घोषणा करता हूँ—भविष्य में श्रगर कोई ऐसा कार्य करेगा तो उसका सिर उसी समय घड़ से जुदा कर दिया जायगा।

[शिवाजी का सिर नीचे भुक जाता है। अहमद की पुत्र-पथू कर्नालयों से शिवाजी की ओर देखती है। उसकी आंखों में ग्रांसू छनछला आते हैं। मोरोपंत शिवाजी की तरफ देखता है और आवाजी सोनदेव घवड़ाहट भरी हुट्टि से मोरोपंत की ओर।]

ययनिका समाप्त

## जगदीश्चन्द्र माथुर

सामाजिक समस्याओं को लेकर एकांकीकार जगदीयचन्द्र माथुर साहित्य-क्षेत्र में आते हैं। आप जिस समय साहित्य-क्षेत्र में आते हैं, उम समय देश संक्रमणकालीन परिस्थितियों से गुजर रहा था। गया साहित्य, गया राजनीति और वया संस्कृति—सभी संक्षमणकालीन अवरोधों, प्रवृत्तियों तथा असंयम से पराभूत था। हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में विभिन्न प्रयोग हो रहे थे; द्धायायादी गुग रहस्यवाद से गठवन्यन के लिए तैयार था, नाटक के क्षेत्र में प्रसाद, डा॰ रामकुमार वर्मा, नेठ गोविन्दयाय, उद्यवनंतर स्टू आदि ने इतिहास तथा संस्कृति को अधिक प्रव्य दिया सा, उसे अन्यवण को वस्तु बनाने का प्रयत्न चल रहा या तथा रंगमंच की मान्यताओं की उपेक्षा की जा रही थी।

समाज राजनीतिक उपत-पुषल का केन्द्र था । महात्मा गांधी हमारे नेता थे श्रीर समाज गांधीयादी विचारधाराओं से परिचानित हो रहा था । समाज की भीतरी विषमताएँ श्रीर वर्ग-संघर्ष की भावना धीरे-धीर पर बना खुकी थीं । धार्मिक विधान के नमून उन्मूलन श्रीर मानवता के श्रीत्यादन का स्वर मृत्यर हो रहा था ।

सीगों में संरक्षि के प्रति जागरकता था गयी थी। प्रशीत मुखर रागने नगा था। सनके नाहित्यकार थ्रपना उत्तरदायिल सेभागने के निए धतीतगत धादपाँतमुख जीवन को थ्रपना उद्देश्य बना रहे थे। खादपाँतमुखी गयार्गनाद का मन्यत पाकर नयोदित नाहित्यकारों को धावत्य प्रसाने का थ्रमनर मिल दहा था।

ऐसी परिस्थिति में श्री मामुर ने ममात भी फान्नरिक समन्नोरियों भी पर्हचानने का अयस्न निका है। श्री मामुर के दिनने एशांकी मिन्नों है, उस मभी को एक साथ रसकर देखने के ऐसा अयस्त है कि दन पर प्राचीन परम्परा की छाया प्रवर्षेष रह गयी है जिसके परिणामस्वरूप इतिहास की कीड़ उन्हें घिक धाक्ष्यंक लगी है पर जहाँ उनके भीवर का नाटककार विद्रोह कर उठा है, वहाँ उनकी चेतना समाज की समस्याओं के प्रति जागरक दीन पड़ती है। ऐसी स्थिति में, ममाज के सोजलेपन की घोर स्पष्ट संकेत थी माधुर ने किया है।

श्री मायुर के एकंकियों में ययावंयादी हिस्टकोण कुछ श्रविक नियर कर श्राया है। वर्ग-संघर्षों के विभिन्न पहलू श्रायः इनके नाटकों में प्रति-पादित किये गये हैं जिनके माध्यम में समाज की भीतरी कुण्ठाश्रों की श्रोर संकेत किया गया है। इनके निए श्री मायुर ने ब्यंग्य का सहारा लिया है। उन्होंने नामाजिक विषमताश्रों तथा कमकोरियों को बड़े ही स्पष्ट नय में समाज के सामने प्रस्तुत किया है। मध्यवर्गीय जीवन की कहानी श्री मायुर के एकंकियों की भावभूमि है।

श्री मायुर के एकांकी नाटनों को देखने से यह स्पष्ट लगता है कि उन्होंने जीवन को बहुत नजदीय से और वड़ी गहराई के साथ देखा है। नाथ ही, ईमानदारी के साथ उसे कलम का महारा देकर सामने रखने का प्रमास किया है।

• ग्रपने एकांकियों में श्री मायुर ने कहीं-कहीं गीतों का प्रयोग भी किया है ग्रीर संगीत तत्व की उपयोगिता को स्वीकार किया है। उनका विचार है कि भारतीय रंगमंच विना संगीत के सफल नहीं हो सकता ग्रीर इस प्रकार उन्होंने प्रसाद की गीत-परम्परा का श्रपने एकांकियों में प्रयोग किया है।

ताय ही हिन्दी रंगमंच की प्रयति और उसके अनुकूल नाटकों की रचना श्री मायुर की अपनी मीलिक देन है। उनके संवाद संक्षिप्त किन्तु मर्मस्पर्सी होते हैं। स्वाभाविकता से दूर जाना उन्हें तिनक भी मान्य नहीं है। श्री मायुर के एकांकियों में प्रयुक्त भाषा सरस और परिष्कृत है। छोटे-छोटे वावयों में, सहज और सरल ढंग से, वड़ी से वड़ी वास कहने की पूर्ण क्षमता इनके पात्रों में है। उनकी भाषा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली बोलचाल की भाषा कही जा सकती है।

चरित्र-निर्माण धीर मनोविज्ञान के नफल प्रयोग ने श्री मापुर को जनता का नाटककार बना दिया है। उनके पात्र स्वासाविकता के नाव रंगमंत्र पर श्राते हैं श्रीर अपने गतिशील मनोविज्ञान से परिचालित होते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे पास में बैठा हुआ मित्र ही यकायक बोल उठा है।

'भोर का तारा' थीर 'श्रो मेरे सपने' थी मायुर के दो एकांकी-संग्रह आये हैं जो नभी दृष्टियों से उल्लेखनीय है।

### कलिंग-विजय

[भवन प्रच्छी तरह सजा हुआ है। एक बड़ी सी चौकी टीवार से समी हुई रखी है, उस पर सुन्दर कालीन श्रीर तोषक रखे हुए हैं। पीछे को श्रोर जिड़की है। सूढ़े के ढंग के कई उपादान रखे हुए हैं। इयर-उधर धूप-दान रखे हैं और एक तिपाई पर वीषक अल रहा है।

निवनी सब पस्तुएँ गजाकर ठीक रराने में लीन है। यभी तिकया ठीव करती है, कभी चावर विद्याती है, कभी दूसरे दीवक को पहले की सहायता से जलाती है। खिड़की के परदे खोलती है। बीच-बीच में यह गायिका से बातें करती जा रही है। गायिका उत्मुकता से प्रश्नों की भड़ी लगा रही है।

गाविका—तो समाट यही श्रावेंने ? निवनी—हां—

(संलग्न है।)

गापिका—धभी ?

गन्तिनी—हां, धनी।

गाविका—में उनने मिल नहीं साली ?

मन्दिनी-गायिकाधों के निए स्थान नियत है।

गायिका-गरां ?

निवती—यरायर वाने कक्ष में । तुम्हें वही बैठकर माना होगा । गाविका—भीर सम्राट वहाँ बैठकर मुनेने । वहाँ चनहोनी-मी बात

है। मंगीन में बेचन स्वर ही तो नहीं होता।

मन्त्रिनी-मंगीत के स्वर में ही सब हुए हो। सबता है। नुस्त्री यात्रा की परसा तो इसी से होंदी।

गायिका-तो ज्या ससाट बना के पारकों है ?

नित्नी—कला के पारली भी हैं और सौन्दर्य के भी। इन दोनों का संयोग अनुचित है।

गायिका-वयों ?

निन्दनी — यह कुमारी रेखा से पूछो । तभी तो उन्होंने गायिकाम्रों के लिए स्थान नियत किया है ।

गायिका — तो श्राज कुमारी रेखा सम्राट् को कर्लिंग-विजय पर १ वधाई देंगी ?

निन्दिनी — श्रीर फिर यह तैयारी किस लिए ! धनुष श्राज तीर को वधाई देगा । यह सम्राट की विजय नहीं, कुमारी रेखा की विजय है ।

गायिका—यह कैंसी पहेली है ? सम्राट् प्रधान मन्त्री के श्रतिरिक्त भौर किसकी सलाह लेते हैं ?

निन्दनी—गायिका, तुम श्रधिक जानना चाहती हो ? यह पाटलिपुत्र के राजमहल की वातें हैं, तुम नहीं समझ सकोगी ।

गायिका — तो क्या कॉलग-विजय प्रधान मन्त्री की सलाह से नहीं हुई है ?

नित्वती—कॉलग-विजय नया, सम्राट् के सभी युद्धों, उनकी सारी योजनाम्नों में प्रधान मन्त्री राघागुष्त की पुत्री कुमारी रेखा का हाथ है, समभीं?

गायिका--राज्य-कुदुम्व की हत्याग्रों में भी ?

निन्दिनी —हाँ, अब कौन है जो श्रशोक के पाटलिपुत्र की गड़ी छीन सके ? राह के सभी काँटे तो दूर हो गये। शत्रु सामन्त मौत के घाट उतार दिये गये। एक भाई सुशीम तक्षशिला में पड़े हैं, श्रीर दूसरे वीतशोक को देश-निकाला है। यह सब क्या प्रधान मन्त्री की सलाह से ही हुआ है ?

गायिका-तो ?

निवनी—सम्राट् को बढ़ावा देने वाली केवल एक शक्ति है— कुमारी रेखा के बचनों की शक्ति, नारी-शक्ति !

गायिका - यह कैंसी नारी-शक्ति है जिसके कारण मानव-रक्त बहे ?

निवनी—रक्त ? हें हैं हैं ! (गम्भीर होकर) गायिका, कुमारी रेखा की अधि में एक दूसरा रक्त है, आकांका का रक्त, सारे भारतवर्ष की महारानी बनने का रक्त (रक जाती है-वाहर परचाप) यह को सम्राट् श्रीर कुमारी रेखा था भी पहुँचे। तुम जाग्री ! (इशारा फरती हुई) इमी कक्ष में बैठो । बीमा लाई हो ?

गायिया-भें वैसे ही गाती हैं। निवनी - ग्रन्छा तो बैठो । जब मैं कहूँ तब गाना श्रारम्भ कर देना-श्रपने उसी मुरीने हंग में।

[गाविका का वायों ओर प्रस्थान । नन्दिनी एक तरफ छड़ी ही जाती है-सम्राट् और रेखा दाहिनी ओर से आते हैं। निवनी का भूष कर प्रस्थान ।] सम्बाद्- ग्रीर, रेता, जानती ही उसके ग्रन्तिम शब्द क्या थे?

चराके श्रन्तिम शब्द नया ये-'वंडाशोक, एक दिन तुम अपने दानुसी के ही दास बनोगे !' रेखा-- इतनी हिम्मत ?

अज्ञोग-दूसरे क्षण उसका मस्तक गेरे पैरों पर लौट रहा वा,

लेकिन कितने भवानक घट्ट वे वे--यूने मसान की तरह भवानक !

रेला - पानी के बुलबुले की तरह शणिक !-- दिः मग्राट् । निरती

एर दीवार भी घोर मध्य करती है। पर उसके बाद रहता गया है-भिन्नी का देर ! असोक-मिट्टी का ढेर-(मन्द स्वर में) "जोन्द्र" मिट्टी का

Bresser

अज्ञोक—हाँ ! (बैठते हुए) सिवा उसकी वहन के । कर्लिंग की राजकुमारी अभी तक अज्ञोक की नजर से परे है ।

रेखा-सम्राट् उस पर नजर डालना चाहते हैं क्या ?

अज्ञोक—तुम्हें ईर्ध्या हो चली, रेला ? (हँसता है।) सुना है वह तो कभी की बौद्ध भिक्षुणी हो गयी।

रेखा—वह शत्रु-कन्या है सम्राट् ! उसके भाई के अन्तिम शब्दों के अनुसार आप उसके दास हो तकते हैं।

अशोक—श्रभी तो तुम कह रही थीं कि मेरा शत्रु है ही कीत ! लेकिन इस हिसाब से तो मेरा सबसे बड़ा शत्रु मेरे निकट ही है। रेखा—निकट ?

अज्ञोक — हाँ ! इतने निकट कि अपने घने केश-पाश में जलभाकर चाहे जब मुभे दीन-हीन कर दे।

रेखा-(समभकर) सम्राट् को यह दीनता श्रखरती तो नहीं ?

अशोक - लू से मुलसे हुए पेड़ से पूछो कि उसकी सावन की मीठी हवा के आगे मुकना श्रखरता है ? (रुककर) जानती हो मैं कहाँ से आ रहा हूँ ?

रेखा - राजमहल से ?

अशोक—नहीं, वन्दी-गृह से। तुम्हारे पिता, प्रधान मन्त्री, मेरे साथ थे। यदि वे न होते तो शायद उन हजारों वन्दियों को देखना मेरे लिए असम्भव हो जाता। उस नरक के बाद यह सुख, यह शान्ति, यह सौन्दर्य, कितने भले जान पड़ते हैं!

रेखा-सम्राट् कोमल-हृदय हैं।

अशोक—(खड़ा होता हुआ) में कोमल-हृदय ?…रेखा ! जानती हो, आर्यावर्त मुफ्ते चंडाशोक के नाम से पुकारता है। चंडाशोक, प्रचंड निर्देय, निर्मम अशोक—कोमल-हृदय ! …िजस दिन मेंने आकांक्षा की ज्वाला को अपने हृदय में स्थान दिया, उसी दिन अपने हृदय को पत्थर की दीवारों से बाँध दिया। समफ्ती ?

रेला—सम्राट् ! उच्चाकांक्षा की ज्वाला को ध्वकाये रखना विरलों

या ही काम है। साधारण मनुष्य जिनमें कोई अपनापन नहीं, शक्ति नहीं, ये क्या समफ्रें उच्चाकांक्षा किसे कहते हैं ?

अद्योग--(खिट्की के सहारे राड़ा होकर बाहर देखता हुआ) और जो साधारण नहीं हैं, वे ही वया समक्ष पाते हैं ? (बाहर फुछ देख कर) वह देखों एक और तारा हुटा।

रैया-हृटने वीजिए सम्राट् ! हम-श्राप उत्ते रोक नहीं सकते !

अधोक—मुनो रेखा ! तुम मानोगी नहीं, लेकिन गुभै कभी-कभी यह भाकाम और उसके तारे ठीक इस जगत और उसके जीवों के प्रतिविम्य जान पहले हैं।

रेला—(उपहासपूर्ण स्पर में) कविता भी नया प्रच्छी चीज है—मग्राट !

अशोक—(मानी मुना ही न हो) देगती हो न ! इन लागों-करोड़ों स्थिर तारों में से एकाथ कैसे आप-ही-आप, अरमानों से तड़पकर, तेजी से बीड़ पड़ते हैं।

रेगा—जब वे जगरते हैं तो आकाण मालोकित हो उठता है। अदोक—नेकित उसके बाद, उनके मुस्त बाद! अरमानों की धान का यह दुकड़ा सोहे के भाकान में टकराकर पूर-पूर हो जाता है। भीर "सीर ने मीधे-सीधे करोड़ों तारे पुषचाप इन तेन की देखते रहते है। "(तहरी सांस नेकर बंठता हुआ) रेगा! हमारे अरमान और हमारी पानांवाएँ हमें मिटाने के लिए बंदा होती है।

रेसा—मझाट् ! आप तो पविता कर चुके; घव मैं भी कर्तभी।
मृतिए, धाकाम में जहां सैक्हों छोटे-छोटे तारे हैं, यहाँ एक चल्द्रमा भी
होगा है।

क्योंक—एमना ग्रवं ! (समभता हुआ) ...... भ्रोह !..... घन्छा ! (हेंसता है।)

रेला — और देलिए, घरती पर तुमुदिनी भी होती है। धव नन्द्रमा को नाहिए कि धवनी कोमल किरहों से कुमुदिनी को ज्ञा दे। नेदिन का नैसा नन्द्रमा, जो माने हो वाले सादतों के बीहे दिखर उसे भीर भी मुस्साय । पहिल कैसी रही सुम्ह है अशोक—सूम तो बुरी नहीं, लेकिन तुमकविता के प्रति निठुर हो। रेखा—श्रीर श्राप मेरे प्रति निठुर हैं।

अज्ञोक — अशोक रेखा के प्रति निठुर हो, यह कॅसे हो सकता है?
जिसकी इच्छा-पूर्ति के लिए मैंने किलग पर चढ़ाई की थी, जिसके
मनोरंजन के लिए मैंने पाटलिपुत्र को एक-से-एक भव्य महलों से भर
दिया, जिसके क्रोध के कारण मैंने अपने छोटे भाई वीतशोक को राजधानी से निर्वासित किया।

रेखा—(चौंककर) वस, सम्राट्! वीतशोक की याद दिलाकर सूखे घाव को हरा न कीजिए। "अब भी उस दिन की याद करते ही काँप उठती हूँ।

अशोक -- आज इस वात को दो वर्ष होने को आये ! सच वताओं, प्या बीतशोक ने सचमुच तुम्हारे साथ नीचता का व्यवहार ।

रेला—आपको विश्वास नहीं हुआ ?—अय तक ? यह भाई की ममता है या मेरा उलाहना ? सम्राट्, मेरे पास जो कुछ था—अपना हृदय, अपने अरमान, अपना प्रेम, सब आपके चरणों पर निद्धावर कर विया । यदि आपको ठुकराना ही है तो एक बार जोर से ठोकर क्यों नहीं मार देते ? यों जला-जला कर मेरा अपमान न कीजिए।

अशोक — ओ ! ... तुम रूठ गयों ? मैंने तो यों ही पूछा था, क्योंकि कभी-कभी जाने क्यों मुक्ते भय होता है कि उसे निर्वासित कर मैंने उसके साथ अन्याय तो नहीं किया। श्रभी मैंने गुप्त दूतों से सुना था कि ताम्रलिप्ति के पास एक बौद्ध विहार में वह भिक्षु हो गया है। मैंने सोचा कि शायद मैंने उसके चित्रय के विषय में गलत श्रनुमान किया हो श्रीर तुमने भी ... (सहसा रेखा को ओर देखकर) — रेखा यह क्या कर रही हो ?

रेखा—कुछ नहीं। इस हार के फूल मसल रही हूँ। अज्ञोक—कौन-सा हार ? रेखा—मैंने पिरोया था "श्राज। अज्ञोक—श्राज ! "श्रोह ! "तो लाश्रो मुभे दो न। रेखा—किसंलिए हूँ ? अझोक--किसलिए ? दूँ। (सोचकर) मेरी कलिंग-विजय के लिए।

रेखा—(अर्थ भरे स्वर में) वस ! इसीलिए ? अद्योग—रेखा !

रेखा—सम्राट्, याद है थापको एक बार चाँदी-सी चमकती हुई गंगा की लहरों पर हम लोग मौका-विहार के लिए निकले थे। तब ध्रापने अपने विद्याल राजभवन की और देखकर कहा था—'रेसा! न जाने कब तुम इस भवन को मुगोभित करोगी?' याद है, मैंने क्या उत्तर दिया था?

अज्ञोक-याद है !

रेखा— मैंने कहा था कि जब आप सारे भारतवर्ष के समयती) समाट् हो जावेंगे, तभी मैं भी महारानी हो सकूँगी। (रुककर)… आज कितन-विजय के बाद आपके समान धार्यावर्त में कोई नक्साट्) नहीं है।

अज्ञोक-तुम्हारा संकत नमभ रहा है, रेखा !

रेखा—तो फिर गया यह हार आज हम दोनों को गदा के निष् बौध न देंगा ?—(आनुरता के साथ)—सम्राट्, प्राज हमारे निरमीम गुत की राश्रि हैं। आज हमारे उपवन में वर्तत छाया है। आज मेरे जीवन की साधना सफल हो रही हैं। न जाने कब ने दस धण की बाट जोह रही थी ! मेरा हार स्थीकार करी, अधीक।

अज्ञोक—ठहरी। रेखा—ठहरूँ ?

अशोक—रेता, तुम्हारे सुत में भेरा मुख है, मुम्हारे आवाद में भेरा धानाय है। पर'''धाज न जाने नयी भेरे ह्यय में कीहरा-ना छाया हुया है। रह-रहत्वर उपेन्द्र के जन्तिम मध्य कानों में गूँज उटते हैं; रह-रहत्वर उन सहसों कैदियों का चित्र मेरी श्रांकों के सामने जिन जाता है, रह-रहार चीतयों के निर्वासन का ६६य याद था जाता है। कह नहीं सकता गयों धनमना हो रहा हूँ।'''रेखा! में अपने-आवको भूगने पाया है, राधि के संभाष में धमनी मनिनता सोने।'' कोई ग्रांगिंग नहीं है? रेखा—(उसांस लेकर) सम्राट, श्राप की यह निगोड़ी कल्पना मेरी सबसे बड़ी वैरिन है। (कुछ सँमलकर) ए, निदनी "निदनी।

#### (नन्दिनी का प्रवेश)

रेखा — वह नयी गायिका आयी हं ? निवनी —जी, वह तो ग्राप ही ग्रा गयी। रेखा — उससे कही कि सम्राट् उसका गाना मुनेंगे।

#### (नन्दिनी का बावीं ओर प्रस्थान)

अज्ञोक—श्रीर सुनी (निन्दनी रक जाती हैं), उससे कही कि ऐसा गीत गाये जो हृदय को गुदगुदा दे—प्यार का राग—नये वसंत की कोयल का राग।

#### (नन्दिनी जाती है।)

रेला—इस गायिका का स्वर श्रत्यन्त मधुर है। आज यहीं मेरे भवन के पास राज-मार्ग पर श्राप-ही-श्राप गा रही थी। मैंने बुलाया। तुरन्त तैयार हो गयी मानो मेरी बाट जोह रही हो!

अशोक—हुँ।

[इतने में वार्षे नेपच्य से श्रत्यन्त सुरीले स्वर में गाना—]

#### गोत

श्रमल, तरल, मयुर, चपल, प्यार का मुराग री। सजल पवन परस विटप, ममंर व्यनि जाग री। पुलक रोक, पलक चपल, गित मय कल गामगात। नवल सरित-युवित चली, सजल शिला पात पात। पिघल-पिघल हिमगिरि उर, बहता वन वाग री। श्रमल, तरल, मघुर, चपल, प्यार का सुराग री।

[अज्ञोक विभोर होकर सुनता है। गीत सहसा वन्द हो जाता है।]
अज्ञोक—(मानो स्वप्न से जागकर)—िकतना सुन्दर है, कितना
मग्रुर—'ग्रमल, तरल, मश्रुर, चपल, प्यार का सुराग री!' रेखा! इसके
गायन में तो प्रभात के पिक्षयों की-सी नवीनता है, नूपुर की-सी चंचल
ध्विन ! तुमने उसे कमरे में क्यों विठा रखा है ? यहाँ बुलाग्रो न !

रेखा--गायिका की देखने से उसका स्वर-माधुर्य पट जायगा सम्राट !

अशोक—(हँसते हुए)—िकर वहीं ईर्ष्या ? तुम मुक्ते कमजोर समभती हो !

रेखा-नहीं, अपने को !

अशोक-कुछ भी हो, उसके गाने में तल्लीनता है, विभोर हृदय की मंगार । एक बात सोचता हूँ में, रेखा !

(निन्दनी का प्रवेश)

निवनी-धीर ?

अझोक—हां खबरव ! (निन्दनी का प्रस्थान) एक बात सोचता हूँ में। पया इस गायिका के धानन्दित स्वर के पीछे सच ही एक ऐसा ह्रदय है—जो हुप से फूला न समाता हो ? क्या उपा और संध्या की फिरणों को छूकर जो चिड़ियाँ बरवस गा उठती हैं—वे मभी मुगी हैं ? "कीन जाने रेखा, उसके इस मुहाबने गीन के मीने एक जर्जर धीर पीड़ित हुदय छिपा हो ?" कीन जाने ?

[पुनः नेपथ्य से गाने का स्वर । प्रत्येक पद के बाव स्वर एक जाता है । इस बार स्वर में एक हस्की वैदना है मानो बीते करण अनुभव की कहानी मुना रही हो—]

धीत

सुना मेरी बक्षी यह तान! फरण उस गाथा के शोषान।

पनंती पंभव का विस्तार, सुना, पंते नागर के पार गरत पूर्वी का सुन्दर देग, अगर जिनका कृत धनुन, उदार गरिन गमनों की उनकी प्राप्त।

मुना मेरी पंगी यह नान!

(गीत रकता है।)

क्षाोक-रेगा-स्वर बदल गया है। तुम तुन नहीं रही हो।

(रेखा चुप, फिर गीत चलता है।)

भ्रमर का सुन कर मधुर निनाद, गंच का पा मधुमय संदेश पवन की चंचल, लहरी एक, पार कर अनजाने से देश

> स्रोजती पहुँची उस उद्यान। मना मेरी वंशी वह तान!

> > (गीत रकता है।)

अशोक — यह तो कहानी-सी जान पड़ती है।
रेसा — मुफे नहीं मालूम था कि यह गायिका इतनी चतुर है।
अशोक — ग्रीर सुनें।

(गीत पुनः)

भ्रमर का देखा उसने रूप, भ्रमर का देखा मुन्दर वेश कहा 'प्रिय चलो हमारे साथ, श्रौर जीतो तुम देश विदेश करो नव मुमनों का रस पान, मूना मेरी बंसी वह तान!

(फिर गीत एकता है।)

अशोक - उसके बाद ?

( हाथ पर ठोड़ी रखकर बैठता है।)

रेला---नेकिन सम्राट्, यह गीत तो बड़ा श्रटपटा-सा जान पड़ता है।

अशोक--उसके बाद ?

(गीत पुनः चल निकलता है—स्वर में तीवता)

श्ररे, क्या था कोई ग्रभिशाप, ग्ररे क्या मायाविनि का जाल कि जो ग्राकांक्षा का वन दास गान्ति मुन्दरता का वन काल

भ्रमर ने विश्व विजय ली ठान ।

अशोक—फिर नेवा हुआ ?

रेखा—आप तो ऐसे सुन रहे हैं मानो श्राकाशवाणी हो। अशोक—सुनो रेखा, निस्चय ही इसमें कुछ भेद है।

```
रेखा-( चौंककर ) क्या ?
              (गीत फिर आरम्भ हो जाता है।)
       घ्वंस करता फूलों के पंख, छेदता कलियों का लघुगात
       मसलता किंगुक पीत पराग, करोड़ों जीवों पर श्राघात
               रुधिर से लाल चला नादान।
   अशोक--श्रोह!
    रेखा-में उसे बन्द कराती हैं। नंदि ""
    वशोफ---ठहरो !
    रेखा-नित्वनी !
                    (गायिका का प्रवेश)
    रेखा-गीन तुम गायिका ? मेरी श्राज्ञा के विरुद्ध ।
                (गायिका आगे बढ़ रही है।)
    अशोक--ठहरो रेखा !
    रेखा-निदनी, नन्दिनी .....
    [ गामिका अशोक को सक्ष्य करके गान आरम्भ कर देती है, कुछ -
अर्थ भरे स्वर में । ]
    कहाँ वह मधुर मतुरतम राग ? कहाँ वह गौयन वारि-विनास ?
    फहाँ जगा रंजित मधुहाय ? एए वस श्रमिलाया की प्यास ?
                यने हो। प्रधाराज पापाण !
                .भूना मेरी बंधी यह तान !
                    ( तन्दिनी का प्रवेश । )
    रेखा-( शहयन्त ग्रोम में ) निदर्ना ! यह मेरी घाला के विना
यहाँ करें है आयी ? ने जाकी इसे !
               ( मन्दिनी उसकी ओर बढ़ती है। )
    गापिका-भै नहीं जा नकती। भै सस्बद् ने यातें कर्रों की .....
    रेया-इतना माहम !
             ( उठना घाहती है, अशोश रोगते है। )
    शक्तीय-ठारी रेता-( मन्दिनी से )-निद्दमी, उमे छोत यो !
```

( नंदिनी छोड़कर जाती है। गायिका से )—गायिका ? कीन हो तुम ? ''सच बंताग्रो, मेरी हत्या करने भेजी गयी हो वया तुम ?''तो तुम भूनती हो (छाती में से कटार निकालकर)''देखती हो यह कटार ?

#### ( खड़ा हो जाता है।)

गाधिका—सम्राट् मेरी गर्दन ग्रापके सामने है। (भूकाकर) भ्राप वार कर सकते है। जहाँ रक्त का सागर ग्रापने बहाया, वहाँ एक बूंद ग्रीर बहाने से न चूकिए।

अज्ञोक — हूँ ! (बैठ जाता है।) "तो वया तुम्हारे गीत का निर्देय फूलों का राजा — भ्रमर — मैं ही हूँ ?

गायिका — मेरा गीत तो कहानी है सम्राट्! म्रापका जीवन कठीर सत्य है।

रेखा--यह क्या सुन रहे हैं सम्राट् भ्राप ?

अशोक-कठोर सत्य। "गायिका तुम जानती हो, किससे बातें कर रही हो ?

गायिका—जानती वयों नहीं। "मैं वात कर रही हूँ पाटलिपुत्र के राजा से—जो कल ही एक लाख निर्दोष मनुख्यों का रक्त वहाकर भारत-का सम्राट् हुमा है।

रेखा - क्या ?

गायिका — कुमारी — युद्ध-क्षेत्र में श्रव भी सैकड़ों मनुष्य तड़पड़ा रहे हैं; अब भी अवमरे घायलों की कराहों से श्राकाश गूँल रहा है। \*\*\* सुना श्रापने सम्राट्!

रेला-पागत हो नया, गायिका ?

गायिका—मेरे साथ चिलए ! में श्रापको दिखाऊँगी, मृत्यु का ताडव-नृत्य ! श्रापके हृदय है, उसमें रक्त है, वैसा ही रक्त श्रीर वैसे ही सहलों हृदय घूल में सने पड़े हैं। सच वताइए सम्राट्, क्या यही श्रापकी विजय है।

अशोक-मेरी विजय ?

गायिका-सम्राट्, कलिंग की राजधानी उजड़ी पड़ी है। कलिंग

का हरा-सरा देन वीरान पड़ा है। सच वतादण—क्या यह धापकी विजय है?

अशोग-गेरी विजय !!

गायिका—श्रीर गुनिए सम्राट्, एक लारा से ऊपर मुक्कों की लागें भैदान में पड़ी हैं; सहसों श्रापके बन्दी-गृह में सह रहे हैं। श्रीर जो बनें हैं, उनकी श्रारमाएँ भुलन छकी हैं—मर छकी हैं। बतादए, इसी में भ्रापकी विजय हैं?

रेखा—बोटों को दुवंन नीति किसी और को समभाना गायिका ! सञ्चाट् को परामधं देना तुम्हारा काम नहीं है।

असोक-कहे जाओ गायिका, प्रयोक की आँगों युल रही हैं। रेखा-यह क्या कह की हैं, सम्राट्, एक नुष्ट भिगारिनी की वारों में पड़कर ?

गापिका--गन्नाद्, आपकी जीत ही में आपकी नय से भारी हार है। आपने कर्निंग की परती की जीता है, उसकी आत्मा को नहीं।

रेसा—धारमा को जीतना ऋषियों का काम है। जिनके पान भुज-यस है, यह मर भी सकते हैं और गार भी।

गायिका—भुज-वत ? गचाद् ने फिन चुजबत का उपयोग तिया भा । उन हजारों सैनिकों का ही तो जिन्हें आप पाटनिपुत्र ने नाये थे । उनसे पूछिए गया इस हत्या को वे जी में चाहते हैं ।

रेसा—माहना और सोनना सैनिकों का कर्तव्य नहीं है। उनका तो क्रतव्य है—नहना, गरना और मारना।

गाविका—एक वात रह गई—कुमारी ! ''भूल जाना ! भूल जाना कि राधु के भी एक नक्त-ना पारा गाँव है, स्वप्त-सी ममुर रथी, गुलाब सा कोमत बच्चा है। '''नेकिन, सम्राट्! पापके नीन के भी तो हृदय में पार है। धनुप पींचते समय प्या यह पार चमड़ेगा नहीं ? धपने सबु पर हाथ चनाने समय प्या उसपा दिन दुसेगा नहीं ? क्विना, भगानक निचार है यह !

भयोग-(सायना परण स्वर में) मेरा दिन तो नहीं दुनता, गामिशा। रेखा - ग्रापको हो क्या गया है-यह दुर्वलता एक सम्राट् को शोभा नहीं देती ।

गायिका-कुमारी, क्या सम्राट् मनुष्य नहीं होते ?

रेखा--- मनुष्यता के माने कायरता नहीं है। श्रशोक साहसी हैं---वीर हैं!

अज्ञोक—रेखा, में साहसी हूँ—क्या इमीलिए मेरा दिल दूसरों के लिए न दुखेगा ?

रेखा - सम्राट्!

गाविका--दुखेगा वयों नहीं सम्राट्, श्रापका दिल भी दुखेगा। हिमालय के पापाण-हृदय में से जीतल नदियाँ वह निकलती हैं।

रेखा—गायिका ! मैं जानना चाहती हूँ कि तुम किस ग्रधिकार से ग्रायवितं के सम्राट् को उपदेश देने ग्रायी हो ।

गायिका — श्रविकार ? मेरा तो यही मनुष्यता का श्रविकार है। मेरा तो वही एक सन्देश है।

रेखा-- वया ?

गायिका—(प्रत्येक शब्द पर जोर देते हुए) मनुष्य दूसरों को मारने के लिए पैदा नहीं हुग्रा, दूसरों के लिए जीने के हेतु पैदा हुग्रा है!

अशोक—(थोड़ी देर सब के चुप रहने के बाद) मुनती हो, रेखा !
……(मन्द स्वर में) मैं तो श्रव तक श्रपने लिये जीता रहा, विल्कुल
श्रपने लिए।

रेखा--- जो श्रपने लिये जी सकते हैं, वही दूसरों का पालन कर सकते हैं।

गायिका--- तुम भूल रही हो कुमारी ! जो अपने लिए जीते हैं, वे दूसरों का पालन नहीं कर सकते-केवल दूसरों की दया के पात्र हो सकते हैं।

अशोक-दया !

गायिका—हाँ सम्राट्, ग्राप श्राज दया-पात्र हैं, एक भिखारी से भी ज्यादा। जानते हैं क्यों ? क्योंकि ग्रापको कोई प्यार नहीं करता। ग्राप ग्रकेले हैं।

रेपा—वस, गायिका—मूर्यंता की भी कोई सीमा होती है, श्रार सहनशीलता की भी।

अझोफ — (अपने आप पुहराता हुआ) मुक्ते कोई प्यार नहीं करता, में श्रकेला हैं ? यह गया सच है, गायिका ?

गाविका-वित्तकुल सन्तः प्रापको कौन त्यार करता है ? प्राप तो । प्राक्तांका के पुलारी हैं, पतकड़ के पेड़ की तरह प्रकेले, पत्ते भी जिसका

साय नहीं देते।

रेता—हैं "हैं "हैं "हैं "बैगी विचित्र वात है। भारतवर्ष के सम्राट् श्रमोक भनेते हैं।...उन्हें कोई प्यार नहीं करता ? "हैं "हैं "हैं "। कैनी श्रनोनी वात है ! हैं "हैं "। (सहसा गम्भीर होकर) लेकिन उनकी करोड़ों प्रजा क्या कर गयी है ?

गामिका—प्रजा ? प्रजा उन्हें प्यार नहीं नरती, उनसे उरती है। अद्योक—(स्वष्न से) प्रजा गुमते गरदी है।

रेशा—(गाविका की ओर कवम बढ़ाकर) श्रीर उनके विश्वस्त मंत्री श्रीर गेनापति ?

गायिका—जो केवल धाता मानना घोर सलाह देना जानते हैं, वे धरोक को प्यार क्या करेंगे !

अद्योक-(करुए स्वर में) रेगा !

रेगा—(जो अब गाविका के ठीक निकट पहुँच गयी है — उसे पूरते हुए) और ''जीर ''श्रीर में ?

गाविका-तुम ?

रेपा-हो में ! उद्गृह नारी ! बतामी-पगा में भी समाद की

प्यार नहीं करती ? यहाम्री वतामी ?

अज्ञीक —रेगा, रेसा, में तो तुम्हें प्यार करता है, में तुम्हें प्यार करता है।

गामिका --नेकिन सम्राट्, कृषाची रेखा घाषनी प्यार नहीं करनी। भरोक-नवा ?

रेगा - मूठ "मूठ" विलगुल मूठ !

(पीदे हट जाती है, मानों पक्ता लगा हो।)

गायिका—कुमारी रेखा ! गुस्सा करना व्यर्थ है । मैं सब कुछ जानती हूँ, सब कुछ !

अशोक—नया जानती हो तुम गायिका ? रेखा का प्यार भेरी एक-मात्र निधि है। उसे तो मुक्त से न छीनो !

रेखा-ग्राप उससे भीख माँग रहे हैं, सम्राट् ?

अंशोक मुक्ते कुछ नहीं सूक्त पड़ रहा है। रेखा "जैसे रास्ता भूल गया हूँ।" गायिका "गायिका! बताओं न क्या जानती हो तुम?

गायिका—तो सुनिए सम्राट्, मैं जानती हूँ कुमारी रेखा की केवल एक लालसा है, एक ग्रिमलापा—भारत की साम्राजी होना और उसके लिए एक साधन है, एक—ग्रापके प्रेम की विजय !!

रेखा-सुन रहे हैं सम्राट् इस पागल श्रोरत का प्रलाप ? ( श्रशोक चुप है। )

गायिका—हाँ, सुनिए भेरा प्रलाप ! ग्रवस्य सुनिए ! रेखा कुमारी की घषकती हुई लालसा का हाल सुनिए । उनकी ग्राकांक्षा जिसमें उनका सारा प्रेम, सारी मानवता अस्म हो जाती है, जिसके मार्ग में श्राने वाले सभी रोड़ों को, चाहे वह निर्दोप देश हों, चाहे निकट-से-निकट सम्बन्धी—

रेखा—(तेजी से उठकर—गायिका के सम्मुख जाकर उसे टोकते हुए) चुप हो, मूर्ख नारी ! क्या तू भी मेरी ज्वाला में भस्म होना चाहती है ? ''सम्राट् पर मेरा हक कोई नहीं छीन सकता—कोई नहीं—मैं कहती हूँ, कोई नहीं। तू कौन है जो मेरी शक्ति को चुनौती ''

अशोक — (बीच में ही बोल पड़ता है।) — रेखा, रेखा !!

गायिका—शक्ति ? रक्त वहाने वाली नारी-शक्ति '''?'' अच्छा तो सुनो, रेखा कुमारी—मैं गायिका नहीं हूँ—मैं क्रा रही हूँ, ताम्रलिप्ति से । ) अशोक—ताम्रलिप्ति ?

#### (रेला चौंककर पीछे हट जाती है।)

गायिका—हाँ सुदूर गौड़ प्रदेश में ताम्रलिप्ति से। वहाँ एक वौद्ध मठ है। नगर के बाहर। उसी मठ में एक भिन्नु रहता है। वड़ा सौम्य, वड़ा सान्त भिन्नु है वह। उसके मुख से तेज टपकता है। पहले वह राजकुमार था; राजा का छोटा भाई, जिसमें वह विश्वास रताते थे, जिसे सदा प्यार करते थे; लेकिन एक दिन राजा की प्रेयसी ने उस पर दोग लगाया—चरित्र-हीनता का। भीर भीर राजा ने उसे निकान दिया। उस भिक्ष का नाम है—बीतबोक।

अशोक-चीत्रशोक !

रेखा-चीतशाक !

(रेखा और पीछे हट जाती है।)

गायिका—चीकिए मत सम्राट्, ग्राप स्वयं नहीं जानते कि धापने पर्यो श्रपने प्यारे भाई बीतबोक को देश-निकाला दिया। " क्या वे चरित्र-भ्रष्ट थे ? सूट! (ग्रपनी चोली से एक कावज निकालती हुए) यह लीजिए। इस पत्र के घटार धाप पहचानते हैं ?

[प्रशोक को वह पत्र देती है; रेखा उस पत्र की ओर अपटती है। पर गायिका पूर्ती से प्रशोक के हाय में दे देती है। ]

रेला---( कांपते हुए स्वर में ) सम्राट्, यह भगत्य है, यह भूठ है।" भ्रोह !

अज्ञोक-टहरो, रेमा-

[सम्राट् पढ़ते हैं, रेला गुनते ही अपना मुँह हाथों से टक सेती है। गाविका दूर हटकर लिड़कों के पास पड़ी हो जाती है।]

'बीतशोक,

एक म्यान में दो तत्त्वारें नहीं रह गयाों। नझाट् नी कृपानाव ) या तो में बन्गी या तुम ! तुम्हारा भया इसी में है कि तुम गुनिमा की तम्ह स्वयं पाटलिपुत के बाहर नने बाधों। नहीं तो मुक्ते धीर नापनों। का अपयोग सरना गरेंगा।

> बुम्हारी, रैसा ।'

अद्योक — (शांत स्पेंचकर) में में स्थार पहुंचानता हैं। (पत्र को मोइता है। सब लोग पुष श्रीर निष्यत हैं। रेगा भी द्यान्त हैं। बुद्द देर बाद)—पह तुमने पक्ष निष्या, रेगा रेग्य बोलकर मुक्ते भीवग् पाप क्याया। श्रीह्मारेगा ! रेखा—सम्राट्, मैंने जो कुछ किया उसमें श्रापका हितचिन्तन था। श्रापकी उन्नति के लिए वीतशोक का हटना श्रावश्यक था, श्रीर'''।

अज्ञोक — रेखा, रेखा, तुमने मेरे साथ अन्याय किया। घोर अन्याय ! उफ, में कैसे इस कलंक को घो सकूँगा ?

रेखा—सम्राट् में भ्रपनी सफाई नहीं दूँगी। मैंने जो कुछ किया, ग्रागा-पीछा विचारकर किया था। ग्राप समभते हैं कि मैंने भ्राप के साथ श्रन्याय किया। मैं समभती हूँ कि मैंने भारतवर्ष के सम्राट् की उन्ति में कोई कसर नहीं उठा रखी। कौन ठीक था—समय इसकी परीक्षा करेगा। लेकिन एक वात का समय ग्राज श्रा गया! मुक्ते जाना होगा श्रापके पास से।

अज्ञोक—रेखा : ''तुम जायोगी ? मुक्ते छोड़कर ?'''कहाँ जायोगी, रेखा !

रेखा—कहीं भी; किन्तु यहाँ श्रव न रह सकूँगी। गाँठ लगने पर)
भी दूटी हुई रस्सी एक नहीं हो सकती। "'श्रव तक श्राप के ऊपर मेरा
पूरा श्रविकार या, पर आज"

अशोक—(आग्रह के साथ) लेकिन रेखा। मैं तो तुम्हें प्यार करता हैं-ग्रव भी''' श्रव भी'''।

रेखा—मुमिकन है। किन्तु जिस सन्देह का बीज प्राज पड़ा है, वह किसी भी दिन फूल-फल सकता है। श्रीर सम्राट्, यह भिक्षुणी ठीक कहती है—रेखा पैदा हुई है शासन करने के लिए—शक्ति के लिए। जहाँ मेरी शक्ति श्रीर ग्राधिकार तिनक भी घटते हैं, वहाँ श्राधिक ठहरमा में व्यर्थ समकती हूँ।

अझोक - तुम यह नया कह रही हो रेखा ? मेरा प्रेम, मेरी लगन, मेरी साधना - नया सब को ठुकराकर…?

रेखा—सम्राट्, मेरी मात्मा में श्रांधी, भीषण श्रांधी चलती रहती है। ऐसी जवरदस्त श्रांधी, जिसके श्रागे प्रेम के कोमल किंगुक ठहर नहीं सकते। मैं इस तूफान के चल पर जीती हूँ। "एकवारगी मुक्ते घोखा हुआ। सच्चे खिलाड़ी की तरह मुक्ते अपनी पराजय माननी है। मैं मानू गी" सम्राट् मुक्ते आजा दीजिए।

अमोष--तुम्हें जाने की माशा दू ?…यह बमा हो रहा है, रेखा ? …भिक्षणी…निक्षणी…!

गापिका - एक बात मुनो कुमारी रेखा, तुम्हारी यह बांधी एककर शीतल सभीर भी तो हो सकती है !

रेला-यह श्रसम्भव है। यही श्रांधी मेरा जीवन है। में जा रही। हैं सम्राट्, जहां भी मेरी श्रांधी के लिए नया मार्ग मिलेगा, नवे जंगत,/ नये नुक्ष-

#### (प्रस्थान-- तेजी से)

अशोफ—रेसा" (उठते हुए) "रेसा "रेसा"। श्रोह भिद्युणी! यह तुगने नया किया! इससे तो श्रन्छा यही था कि तुम मुक्ते अपने क्रूडे स्वप्न में रहने देतीं।

गायिका-श्रापका स्वप्न ग्रापको फिर मिल सकता है।

अशोक—यह मेरे प्रेम का स्वप्न या, भिक्षणी ।""तुग्हीं ने तो कहा । भा—में भवेला हूँ ।" हाँ में अकेला हूँ । धव " मेरे प्यार का एकमाम केन्द्र सुमने धीन लिया ।" में भारतवर्ष का सम्राह्—कितना वयनीय हूँ ।

गाविका — सम्राट्, इधर देखिए । धान धावके बन्धन टूट गर्प ।

अशोक-प्रेम के बन्धन ।

गाविका-नहीं, पृणा के बन्धन-सालसा के बन्धन ।

अज्ञीक-परन्तु मेरी लालमा अगर है।

गापिका—उसे धमर ही रहने दीजिए। प्रापकी लालसा धमर कृषी तो धापका प्रेम भी अमर क्षेगा। धाज धापसे संमार इन दोनों की भीरा गांगता है।

अझीक - मह नया गह रही ही, निसूची ?

गायिका -- रोझाट्, श्रापके ह्रटे हुए स्वष्य के संटहरी में यात्र में एक गया स्वष्य देश रही हैं, नये जीवन का स्वष्य, नये उस्लाम का, नई दुनिया का स्वष्य ।

अझोक-परना देवी ! मेरी दुनिया तो उद्गंद हुनी है।

गायिका —वह तो मंकीयं, स्वार्थपूर्ध दुनिया यो । सेनिन एउ भीर भी तो दुनिया है, सन्ताद, उन जगमगात हुए सारों थी. हैंनती हुई निवयों की दुनिया ।''''यह पृथ्वी कितनी सुन्दर है—कितनी सुहावनी—सम्नाट् ! ···लेकिन श्राज, श्राज इस मनोरम जगतीतल पर एक पिशाच घूम रहा है। अशोक-पिशाच ?

गांविका हां । युद्ध का विशाच, नरहत्या का विशाच । सम्राट्, इस मुन्दर संसार में आज अकेला मनुष्य असुन्दर है, हत्यारा है, अभागा है।

अज्ञोक - ओह भिक्षुणी इतनी जिम्मेदारी में नहीं सह सकूँ गा।

गाविका-सम्राट्, इन रक्त की नदियों के पीछे, इस हाहाकार श्रीर भ्रत्याचार के उस पार, में एक नई दुनिया का स्वप्न देखती हूँ — कर्लिंग की उजड़ी हुई घरती में एक नई सुटिट। "आप भी देखिए सम्राट्, उस श्रोर चिताग्रों के परे श्राहों के ऊपर—देखिये न।

अज्ञोक-लेकिन, देवि ! मेरी लालसा, मेरी श्रृट्त श्राकांक्षा !!

में न देख सकू गा "नहीं "नहीं !

गायिका-वयों नहीं सम्राट्? ग्रापकी लालसा, श्रापके श्ररमान, आपकी शक्ति, श्रापका प्यार—सब श्राज से उस अनीखे चित्र का निर्माण करेंगे।" फिर कोशिश कीजिए, नया आप उस स्त्रप्त की नहीं देख पाते।

अज्ञोक-में कोशिश करूँगा, देवि !

गायिका-र्म तो देख रही हूँ, सम्राट्, उज्ज्वल प्रभात, भगवान बुद्ध की करुणामधी किरणों से भ्रालोकित प्रभात ! "में देख रही हैं भारत-भूमि के कोने-कोने में उनके पावन सन्देश का प्रचार, आर्यावर्त के हर एक नगर में शिलालेख श्रीर स्तम्भ, श्रीर में देख रही हूँ सदियों बाद, संसार के हृदय-मन्दिर में अशोक की प्रतिमा सच्चे धर्म के पुजारी की प्रतिमा (एककर) मुक्ते निराश करेंगे सम्राट ?

अज्ञोक—(विस्मित) देख रहा हूँ, देवि—मैं भी देख रहा हूँ, मेरी म्रात्मा घुल रही है, मेरा कलंक घुल रहा है। भिक्षुणी "भिक्षुणी ! कैसा

उज्ज्वल प्रभात है यह ! ...

#### (निस्तब्धता)

गायिका—रात वीत रही है, सम्राट् । मुक्ते जाना है। अशोक-(सहसा) वया कहा ? गायिका-रात वीत रही है, मुक्ते जाना है।

अशोक-लेकिन, नेकिन "तुमने मुमे, नया मार्ग दिखाया - कैसे इस प्रहसान को चुकाऊँगा ?

गायिका-विश्व-सेवा के द्वारा-

अझोक-यपनी सेवा का भी मुक्ते श्रवसर दो, देवि !

गाविका-मेरी सेवा ? भिधुणी की वया सेवा ?

अद्योक-युद्ध भी नहीं ?

गायिका-नुद्ध भी" (मानो याद ग्रामी हो) "हाँ एक काम है। अञ्चोक-(बातुर होकर) कही !

गायिका-श्राप मेरे लिए एक भाई ला दीजिये ! ता सकेंगे ?

अझोफ-(विस्मित) भाई?

गायिका हो ! भाई । "भेरा भी एक भाई था, परन्तु कल वह थापके कलिंग-युद्ध में मारा गवा।

अशोक-(मानी बिजली हू गयी हो) सत्त बतायी, तुम कीन ही है। गायिका-यी । "कलिंग की राजगुमारी। अब एक भिधुणी हैं

ं अशोक-(गिर पड़ता है घुटनों पर अपने हार्थों से मुह दकता हुआ) कलिंग की राजकुमारी ''राजकुमारी ।'''(रुँचे गले से) छोह !

···में तुम्हारे भाई का हत्वारा है हत्यारा !!

गायिका - नहीं समाद् । भाग ही मेरे भाई हैं (धैपे गने से अशोक के कन्चे पकड़ते हुए) उठों मेरे भाई ! उठों मेरे धर्मान । (प्रशीक एड़ा होता है।) "मेरे भाई!

अञ्चोष-मेरी "बहन!

गायिका—यहो, कहो, गानर यहो, जोर से कहो—युद्ध गरणी ति, संपं धरणं गराहामि, धर्म गरणं यन्तहामि !! असोक—युद्धं गरमां यन्द्रामि, संधं गरमां गन्दामि यमं गरमां गन्द्रामि, संपं धारणं गन्द्रामि, धर्म शर्पा बन्द्रामि !!

गरहामि !!!

(पर्दो गिरता है।)

# रामदृच् वेनीपुरी

रामवृक्ष वेनीपुरी जी द्वितीय महायुद्ध के समय हिन्दी साहित्य क्षेत्र में श्राते हैं। द्वितीय महायुद्ध ने समस्त विश्व की श्रस्त-व्यस्त कर दिया था, समस्याएँ हर समय, हर व्यक्ति के सामने मुँह वाये खड़ी थीं। वह समय हमारी परतन्त्रता का श्रन्तिम चरण था। मानसिक दासता के चरण भी हीं पड़ रहे थे। हममें चेतना श्रा रही थी। हम श्रपती संस्कृति, समाज श्रीर श्रतीत के श्रित दिन-श्रतिदिन जागरूक हो रहे थे। ऐसी ही परिस्थिति में श्री बेनीपुरी जी ने जिल्ला प्रारम्भ किया था। स्वाशिवक ही था कि इन्हें श्रुपनी कथावस्तु के लिए इतिहास, पुराण तथा मगाज को देखना पड़ा।

इससे पहले इतिहास की फ्रोड़ की प्रसाद जी ने अपने नाटकों के लिए चुना था थीर इस युग में आकर श्री वेनीपुरी अपने नाटकों के लिए युगः उसी स्थल पर पहुँचे हूँ जहाँ प्रसाद जी थे। इसी कारण इनके कथान हों का सम्बन्ध भारत की आनीन, ऐतिहासिक एवं सोस्तुतिक घटनाओं ने है। प्रसाद जी की भांति ही श्री बेनीपुरी ने भी अपने निए बौद कानीन कथानक सुना है। गाय ही बेनीपुरी जी ममाज के प्रति भी नतई हैं श्रीर इनके एकांकियों में समाज का सजन निक्रम् भी हुआ है।

धापने धपनं एकांकी नाहकों में जीवन को समभने का प्रयान किया है और धनुभवात सस्य के धाधार पर उसे समाज के नामने रचना चाहा है जिसके गाध्यम से सामाजिक विभीषका ने प्रति विशेष्ट्र प्रतिपादित किया गया है। यदार्पवादी जीवन वैनीपुरी की को यपनी ओर पूर्णतः सीच नहीं पादा है जिनके परिणामस्वरण ऐनिहानिक एकांपियों में श्रादर्शवादी मान्यताधी को प्रथय मिना है।

पात्रों में चयन के साथ ही, घटनायाँ, भावनायाँ तथा उनकी

प्रतिपादन-प्रणाली एवं व्याख्या की मौलिकता श्री बेनीपुरी जी की श्रपनी देन कही जायगी। उनका दृष्टिकोण पूर्णतः नवीन है पर नाट्य-शास्त्रीय-मान्य परम्पराश्रों की उपेक्षा यथासम्भव बेनीपुरी जी द्वारा नहीं हुई है। इसके साथ ही पात्रों के मनोभावों के चित्रण में उनकी मौलिकता स्पष्ट हो गई है।

रंगमंच की व्यवस्था श्रौर उसकी श्रावश्यकता की श्रोर वेनीपुरी जी ने सर्वेदा व्यान दिया है। एक-सूत्रात्मकता इनके एकांकी की विशेपता है जिससे लेखक की रंगमंच के स्वरूप श्रौर सूचनाश्रों की श्रोर सतर्कता का संकेत मिलता है।

वेनीपुरी जी का भाषा पर श्रिषकार है। सरल से सरल शब्दों द्वारा वड़ी से बड़ी वात कहना इनकी विशेषता है। मनोदशा के अनुकूल विभिन्न शब्दों का चयन, शब्द के प्रयोग की सार्थकता के प्रति लेखक की सतर्कता का संकेत करता है। हिन्दी-उर्दू जो भी शब्द समय श्रीर परिस्थित के अनुसार ठीक उत्तरता रहा है, उसका प्रयोग करने में वेनीपुरी जी को कोई हिचक नहीं हुई है, जिससे भाषा सरल श्रीर सजीव हो उठी है। उनका ज्यान भाषा की वोधगम्यता पर सदा बना रहा है। श्राम-फहम भाषा श्रीर चलते-फिरते मुहाविरों के प्रयोग पर उनका ज्यान सदैव रहा है।

कृतियां --- श्रमरज्योति, नया समाज, नेत्रदान, संघिमत्रा, सिंह विजय, सीता को माँ श्रादि ।

#### राम-राज्य

(प्रवयता)

ग्राज से ठीक सौ वर्ष वाद। याद रिलए, ग्राज से ठीक सौ वर्ष वाद ग्रथीत् यीस सौ इकावन ईस्वी में ! जरा श्रपनी कल्पना को तीन्न होने दीजिए—श्राज की पायिवता को पीछे ढकेल कर उसे उड़ान भरने दीजिए ग्रीर चले चलिए २०११ ईस्वी में !

#### प्रथम दृश्य

(हवाई जहाज के उड़ने और उतरने के शब्द) स्वागताधिकारी—नमस्कार श्रीमतीजी, नमस्कार महोदय ! स्त्री—नमस्कार ! पुरुष—नमस्कार !

स्वागताधिकारी—श्राप कहाँ से पधार रहे हैं ? श्रापकी ग्रुभ गात्रा फा जहेंदग ?

पुरप—हम दक्षिण ध्रुव-प्रदेश से छा रहे हैं। वहाँ पर हम जोग एक उपनिवेश बसाने जा रहे हैं। उस ध्रुव-प्रदेश में हम जो एक नवीन समाज बनाने जा रहे हैं, उसकी भ्राचार-शिना बगा हो, इसके लिए भिन्न-भिन्न देशों की सामाजिक पद्मति के श्रव्ययन के लिए, हमने भिन्न-भिन्न देशों में शिष्टमण्डल भेजे है। धापके देश में धाने का सीभाग्य हम दोनों को मिना है।

स्वागताधिकारी—बढ़ा ही शुभ उद्देश्य ! हम आपका हृदय से स्वागत करते हैं। आपको जात ही होगा, हमने तो अपने यहाँ बापू के धादमें के अनुसार रामराज्य की स्थापना कर की है घोर, हमारी धादाा है, एक दिन सारा मंत्रार बापू के उस आवर्श को अपनायेगा। स्त्री—हाँ, पूज्य गांघी जी के महान् देश को अपनी आँखों से देखने के लिए ही तो हम यहाँ भेजे गये हैं।

स्वागताधिकारी — हम आप लोगों को सारी सुविधाएँ देंगे। हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही ग्रतिथि को देवता माना गया है — श्रतिथि देवो भव! (पुकारता है) परिचालक!

परिचालक-महोदय !

स्वागताधिकारी—आप इन्हें जवाहर-ग्रतियिशाला में ले जायें। (आगत च्यक्तियों से) हमने प्रपने विदेशी ग्रतिथियों के लिए जो विश्रामा-गार वनाया है, उसके नाम के साथ अपने प्रथम प्रधानमन्त्री का नाम जोड़ रखा है—क्योंकि उन्होंने ही हमें सर्वप्रथम ग्रन्तर्राष्ट्रीय बन्युत्व का पाठ सिखाया था।

स्त्री—हम उनके स्मारकों ग्रौर स्मृति-चिन्हों को भी देखना चाहेंगे।

स्वागताधिकारी—श्रापको सारी चीजें देखने की सभी सुविधाएँ दी जायँगी। (पुरुष से) लेकिन आप अतिथि-शाला में जायँ, उसके वहले एक निवेदन।

पुरुष-भाशा दीजिए!

स्वागताधिकारी—हमारे यहाँ आज्ञा नहीं दी जाती, निवेदन किया जाता है। (मुस्कान) निवेदन यह है कि यदि आपके पास कोई अस्त्र- शस्त्र हो, तो उसे यहीं रख दीजिये।

पुरुष — (शंकित) श्रोहो ! तो श्राप मुक्ते नि:शस्त्र करना चाहते हैं। यह तो किसी परदेशी पर श्रत्याचार है।

स्वागताधिकारी—(हँसता हुआ) ह-ह-ह-! हर विदेशी ऐसा ही कहता है। महीदय, हम आपसे शस्त्र यहीं रख देने को इसलिए कहती हैं कि हमारे यहाँ शस्त्र रखना वर्वरता और पशुता का चिह्न समक्ता जाता है। श्रादमी ने शस्त्र का प्रयोग वनैले भैसों, वाध-सिंहों श्रीर विपधर नागों से सीखा! पूज्य वापू ने हमें श्रीहंसा का पाठ सिखाया था, हमारे गले के नीचे भी पहले यह वात नहीं जतरती थी।

पुरुष-किन्तु, यदि हम पर प्रहार किया जाय, तो हम श्रात्मरक्षा कैसे करेंगे ?

स्वागताधिकारी—प्रहार ! हमारे देश में, वापू के इस राम-राज्य में, कोई किसी पर प्रहार नहीं करता ! श्रव हम पूर्ण सभ्य हो चले हैं—आदमी जितना वर्वर श्रीर श्रसभ्य रहता है, उतना क्रूर श्रीर हिसक होता है। ज्यों-ज्यों सम्यता श्राती जाती है, त्यों-त्यों वह दयालु श्रीर अहिंसक होता जाता है। सम्यता की पहिचान ही है अहिंसा।

स्त्री-प्रापकी बातें सत्य के बहुत निकट मालूम होती हैं।

स्वागताधिकारी—वापू कहा करते थे, श्रहिंसा का सन्देश सबसे पहले स्त्रियाँ और बच्चे समक्षते हैं। वापू के कथनानुसार पहला सत्या-ग्रही एक बच्चा था।

पुरुष—तो क्या आपके देश में सेना भी नहीं रखी जाती ? यहाँ इस हवाई अड्डे के अगल-वगल कहीं किसी सैनिक या प्रहरी की नहीं देखकर मुभे कुछ आरचर्य हो रहा था।

स्वागताधिकारी—नहीं ! हमारे देश में सेना नाम की कोई चीज नहीं है। जब हम स्वतन्त्र हुए में, गुद्ध दिनों तक हमने सेना रखी। हम लड़ाइयों में भी शामिल हुए। किन्तु धीरे-धीरे उसकी व्यवंता सिद्ध हो गई।

पुरुष-भीर, यदि कोई आपके देश पर नढ़ाई करे, तब ?

स्वागताधिकारी — कैसी वार्ते कारते हैं धाप ? क्या इस वैज्ञानिक युग में देशों पर घढ़ाई करने की जरूरत रह गई है, जबिक एक छोटी-भी पुष्ट्रिया सारे गंगार को अस्म कर सकती है ? इन परमान्यु ध्रस्त्रों के बाद फिर सेना की क्या सार्थनता रह गई ? वह तो जहां की तहां खड़ी रह जायनी या देर हो जायनी।

पुरुष — सामके देश को महम नहीं करके प्रापको गुलाम तो यनाया जा सरता है!

स्वानताधिकारी—ह-ह-ह ! गुनाम बनाया जा सहता है ? एक बार हमें गुनाम बनाया गया था। उनका गहन-बन भी असीम समसा जाता था। फिन्तु बाषू श्री शहिना के सामने उनकी फोर्ट शक्ति गाम त्राई ? ग्रीर उस समय तक श्रहिसा पर हमें ऐसी ग्रास्था भी नहीं थी। वस, देश में सिर्फ एक मुट्टी लोग ग्राहिसक थे। उन्हीं को लेकर वापू ने उस समय के संसार के सबसे वड़े शक्तिशाली राष्ट्र की भगा दिया। ग्राज तो हमारा वच्चा-वच्चा ग्राहिसा का मर्म समऋ चुका है।

पुरुप—तो नीजिए, यह पिस्तीन ! (पिस्तीन निकानकर देता है) स्वागताधिकारी—ग्राह ! उफ...

स्त्री—ग्ररे ! ग्राप इस तरह विचलित क्यों हो गये ? महोदय, महोदय !

स्वागताधिकारी—श्राह! यदि यह कलमुँही संसार में नहीं श्राई होती, तो वापू को उस दिन उस प्रकार मरना नहीं पड़ा होता। श्रीमती जी, पिस्ताल देखते ही हमारे हृदय में घृणा की जो भावना उमड़ पड़ती है, क्या श्राप लोग उसकी कल्पना भी कर सकेंगे? उफ—

स्त्री—गांधी जी की हत्या<sup>र</sup>! उसकी कल्पना तो हमें भी कैंपा देती है, महागय!

स्वागताधिकारी—श्रीर, उसके वाद भी श्राप लोग अस्त्र-शस्त्र की वार्ते करते हैं ? खैर, अभी श्रतिथिशाला जाइये । फिर कभी वार्ते होंगी। नमस्कार । परिचालक, रथ लाइये ।

स्त्री —नमस्कार, नमस्कार ! पुरुष —नमस्कार, नमस्कार !

(मोटर के निकलने की आवाज)

# द्वितीय दृश्य

(मोटर के ठहरने की आवाज)

प्रवन्यक — स्वागत श्रीमती जी, स्वागत महोदय ! स्त्री — नमस्कार ! पुरुष — नमस्कार !

प्रवन्यक—अभी हवाई अड्डे से हमें सूचित किया गया है कि म्राप दोनों पमार रहे हैं। बाइये, श्रापकी सुख-मुविधा का सारा प्रवन्य हमने कर रखा है। अतिथियाला का यह मानचित्र है (कागज खोलने का अब्द) इनमें ये आयाम-कक्ष इस समय खाली हैं।

स्त्री—ग्रीर, भोज्य-पदार्थों की मुत्री भी तो होगी। प्रचन्यक—हीं, यह सीजिये (कागज का शब्द)।

पुरप-यदा श्रीर भोजन के लिए हमें यथा देना पड़ेगा ? बया श्राप हमें बता सर्वेंगे ?

प्रवन्यक—हः हः हः—वया देना पट्टेगा? वया लेना पट्टेगा-विदेशियों में मुंह ने यह मुनते हम तो हैरान हैं। महादय, वया प्रापको वायु के लिए कोई मूल्य देना पट्टता है? जल के लिए कोई मूल्य देना पट्टता है? जल के लिए कोई मूल्य दुकाना पट्टता है? फिर भोजन के लिए मूल्य क्या? यह तो मनुष्य की प्रारम्भिक प्रावस्यकता है! श्रीर, वया अपनी छाया के लिए कोई युक्ष मूल्य सीजता है, जी यह कका आपसे कुछ मांगे?

स्त्री-तो यहाँ गोजन भीर आवाग ...

प्रयामक—हो, बापू के राम-राज्य में भोजन और आवास पाने का अधिकार नव नागरिकों को प्राप्त है। फिर, आप तो अतिथि है।

पुरुष-पन्य है भाषका देश, पन्य है बाबू का राम-राज्य ! हम इसी राम-राज्य को देखने तो आये हैं। उसके लिए क्या प्रवन्ध रहेगा ?

, प्रयत्मक-प्रापकी क्षेत्रा में पय-प्रदर्शक पहुँच जार्गेंगे । श्राप जहाँ चाएँ, निरसंकोच जा सकते है । श्राप क्या-क्या देखेंगे १

पुरव-नुष्य तो उत्तरते ही देग चुना । में विशेषतः उद्योग-धनी स्रोर गेतीवारी\*\*\*

रमी-श्रीर, में बच्चों की विशा श्रीर पारिवारिक जीवन !

प्रवत्यक—सच्छा चुनाव ! पुरुषों के हिस्से उद्योग-पत्थे, विशेषारीः) स्प्रियों के जिस्से पारिवारिक जीवन; भाषी नागरिकों की विका-दीक्षा ! बापू के राम-राज्य में भी यही व्ययस्था है और यज्ञी व्यवस्था उत्तिन भी है। वर्षों ?

(स्त्री और पुरव हुंस पहते हैं)

## तृतीय दृश्य

(दूर से सामूहिक गीत और वाद्य की फंकार)

पुरुप-हमें ग्राप कहाँ ले ग्राये ? यहाँ क्या कोई संगीतशाला है ? स्त्री-अहा, कितनी मधुर भंकार।

पयप्रदर्शकः संगीतनाला नहीं, यह तो श्रमशाला है, जिसे पहले कारखाना कहा जाता था। पहले हम कारबार पर जोर देते थे, श्रव श्रम को ही महत्व देते हैं।

पुरुष-कारखाने में संगीत ?

पयप्रदर्शक—श्रम और संगीत में प्रारम्भ से ही अविच्छेद्य सम्बन्ध रहा है न । संगीत की उत्पत्ति ही श्रम से हुई । हमारी स्त्रियां प्रारम्भ से ही चवकी पीसते समय, धान कूटते समय, गाती रही हैं । हमारे मछुए नाव खेते समय, हमारे शिल्पी वड़ी-वड़ी घहतीर उठाते समय भी गाते रहे हैं । किन्तु ज्यों-ज्यों हम तथाकथित सम्य होते गए, श्रम से संगीत को अलग करते गये । फल यह हुआ कि श्राज मेहनत एक खटत-किया हो चली हैं—उवाने वाली, थकाने वाली, श्रकाल बृद्ध बनाने वाली ! श्रव फिर से हमने श्रम को संगीत के साथ नत्यी करके काम को खेल बना दिया है ।

पुरप-पहले हमें कार्यालय में ले चिलये, वहाँ मैनेजर से कुछ वातें करके तब भीतर चलेंगे।

पय-प्रदर्शक — मैनेजर ! अव हमारी श्रम-शालाओं में किसी मैनेजर की आवश्यकता नहीं रह गई है। प्रारम्भ में हमने प्रवन्यक रखा था। क्योंकि उस समय तक हममें पुरानी आदतें थीं; जो हमें कामचोर बनाती थीं! किन्तु, धीरे-धीरे वह आदत दूर हो गई। अब तो लोग स्वयं श्रम-शाला में उसी प्रकार आ जाया करते हैं; जैसे पहले सिनेमाघरों में खुशी-खुशी जाते थे।

पुरुष—तो वेतन आदि का निर्णय कैसे करते हैं आप लोग ?

पथ-प्रदर्शक वेतन ? ह-ह-ह-! वेतन कौन दे श्रीर किसको दे। समाज की श्रमशाला है; समाज उसके फलों का उपभोक्ता है। श्रपनी

यक्ति के अनुमार सभी श्रम करते हैं श्रीर अपनी श्रावश्वकता के अनुमार मत्र उपयोग करते हैं।

स्त्री-किन्तु, कितने ही देशों में तो यह प्रयोग ग्रमफल हुया।

पय-प्रदर्शक — वयोकि उन लोगों ने दवाव और जोर से काम लेना चाहा ! बापू की कर्मविधि तो अन्तः प्रेरणा के जगाने पर निर्मर होती है । हमने उनकी विधि अपनाई, हम मफल हुए । हाँ, एक बात और—

स्त्री-यया ?

पय-प्रदर्शक — बापू बड़े-बड़े कारसानों के निरुद्ध रहे हैं। बड़े-बड़े कारसानों में मसीन ऊपर रहती है, प्रादमी उसके नीचे कुचलता रहता है। एससे मनुष्यता यिकास नहीं पातो। फलतः मनुष्य भीर मसीन में इन्द्र रहता है, उत्पादन में बुटि होती है। फिर एक बड़े कारसाने के बन्द होने से देश भर में हाहाकार मच जाता है। प्रतः हमने स्ट्रोटी- एसेटी अगणानाएँ ही बनाई है— जहाँ हर बादमी हर प्रादमी को पहनान नमें, अपना सके, प्रपन्ना भाई बना नके। श्रीर, यदि एकाए अमराना में उत्पादन कम भी हुपा; नी देशस्यामी कुम्रभव नहीं प्रकृत सके।

# (भोंपू की आयान)

स्त्री—प्ररे, यथा कारणाना बन्द होने जा रहा है ? श्राह, हम इस श्राप्तीकक प्रयोग को देख न सके।

पुरुष—हाँ, इस विचित्र प्रयोग को हम और्गो देखना चाहते थे, महासप !

पयप्रदर्शक — भींपू तो यज गया; किन्तु जरूद निकलता कौन है ? गाम की तो हमने भेल बना दिया है। बच्च क्या विन के मैदान को जन्द छोड़ने हैं ? तीन बाद ऐसा भींपू बजेगा, तय गही श्रममाला खाली होगी। (संगीत का स्वर तेज होता हैं) मुनिय, भींपू बजते हो संगीत कितना जना हो गया — चलते-चलाने घोड़ा और श्रम, मोड़ा भीर मंगीत।

स्त्री—तो हम तेशी मे चर्ने । पुरम—हौ-हौ तेशी मे शी ।

# चतुर्थ दृश्य

# (वच्चों का कलरव सुनाई पड़ता है)

एक वच्चा — देखो, देखो, मेरे गुलाव में यह कितना सुन्दर फूल खिल आया है। इसका रंग है गुलाव का और गंघ रजनी-गंघा की। कैसा कमाल किया है मैंने।

दूसरा बच्चा—श्रीर इधर देखो, क्या ऐसा श्रालू तुमने कहीं देखा था ? मैंने इसके लिए खास खाद बनाई थी। गुण टमाटर का स्वाद नासपाती का )

तीसरा बच्चा — अरे भाई, दोनों इघर आओ और देखों मेरी यह पुस्तक- धारिणी ! इस पर पुस्तकों फॅक भी दो, तो वे आप-ही- आप पंक्तियों में सज जायेंगी। कैसी कारीगरी की है मैंने ?

शिक्षक—वच्चो, प्रव इघर या जाग्रो, थोड़ा सैदान्तिक ज्ञान भी तो ले लो !

सब बच्चे-शाये गुरुदेव।

(स्त्री, पुरुष श्रीर पथ-प्रदर्शक का प्रवेश) स्त्री—क्यों महोदय, यही आपकी पाठशाला है ? शिक्षक—हां, यह हमारी पाठशाला ही तो है। पुरुष—यह पाठशाला है या उद्योगशाला!

विक्षक—यों समिभिये तो पाठशाला, उद्योगशाला और प्रयोगशाला— तीनों एक साथ ! वापू ने शिक्षा का यह नवीन प्रयोग प्रारम्भ किया या, जिसे वह मौलिक शिक्षा-पद्धित कहते थे। वच्चों का सबसे पहला काम होता है, दूध पीना, फिर खेलना। भोजन के साथ खेल को जोड़ दीजिए और फिर इन दोनों का सम्बन्ध शिक्षा से कर दीजिए, वस शिक्षा का यही मूलसूत्र पकड़ कर हम ग्रागे वढ़ते हैं। इसी से यह मौलिक शिक्षा कहलाती है।

• स्त्री—आपके रामराज्य की सब चीजें ही विचित्र हैं। क्या मैं इस वच्चों से वार्ते कर सकती हूँ ?

शिक्षक-श्यों नहीं ? रामू ! इनसे वातें तो कर वेटा !

स्त्री-प्राप किस वर्ग में पड़ रहे हैं ?

चच्चा-वर्ग ? वर्ग क्या है ? बापू के समाज में वर्ग ?

स्त्री—(बिक्षक से) यह बच्चा क्या गह रहा है ? क्या यहाँ पाठ-शालाग्रों में वर्ग नहीं रने जाते हैं ?

जिक्षक-नहीं श्रीमती जी, (बच्चे से) रामू, यह जानना नाहते हैं कि तुम क्या सीरो रहे हो ?

बच्चा—जमीन और बीज के भेदों को समक चुका हूँ; श्रव मीसम के भेद से जमीन श्रीर बीज के भेद के बारे में प्रयोग कर रहा है। क्या ऐसा गेहें नहीं बनाया जा सकता जो धान के मीसम में ...

स्त्री-रहने दो बच्चे, मैं समझ गई...

बन्चा—नहीं, नहीं, में श्रीर भी गीम चुका है। में ऐसी मुर्गी बनाने में नगा है जो बैठते ही मनचाही दिशा में पहुँचा दे।

स्त्री---रहने दीजिए, मैं समक गर्ड, सगक गर्ड । धन्य हैं आपके निक्षक जिन्होंने ऐसे छोडे-ने बच्चों में इतना ज्ञान भर दिया है।

दच्या -- शिक्षक, शिक्षक किसे कहते है ?

स्त्री—तो उन्हें भ्राप गया फहते हैं ?

विक्षक—धीमती जी, हमारे यहाँ शिक्षक नहीं होते ! शिक्षक वह है, जैसा भाषने कहा है, जो बच्नों में जान भरे । बच्नों में जान भरने का पेसा हमारे यहाँ नहीं रह गया है । हमें बच्चों में जो जान निहित है, उसे उभारना भर है । रमनिए जो लोग उन्हें हम कमें में महायता एहुँचाते हैं, ये शिक्षक नहीं बहुता कर शिक्षा-सहायक कहनाते हैं । विक्षक भाष्य हमने जानतूक कर छोड़ दिया है । यभोंकि सहायक शब्द ने यहने सदा यह धनुभव करने हैं कि उन्हें स्वयं शिक्षित होना है, श्मारा काम निर्क सहायना देना है उन्हें ।

#### (संगीत का रवर)

यहचा—यह नम पाठ प्रारम्भ हो रहा है, धव में जा नगरा हैं ?
हत्री—शिक्षण में भी धानने संगीत की प्रमुक्ता दें रखी है !
हिक्कण—धन के नाम संगीत भीर नंगीत के छाप निधय—
शिक्षण भीर यम को जोड़ने वाली कही की संगीत ही है न ? संगीत

को चन्द कर दीजिए, श्रम ग्रौर शिक्षण दोनों नीरस, गुष्क ग्रौर उकताने वाले, उदाने वाले दन गये ।

स्त्री--श्रापके यहाँ सब कुछ विचित्र है !

### पंचम हश्य

(एक अनहद संगीत: वंशी का स्वर: कोयल की कूक)
पुरुष-शाप हमें किस मायापुरी में लिए जा रहे हैं?

स्त्री—हाँ, यह मायापुरी ही तो है, चारों ग्रोर लहलहाते हुए खेत। कहीं फल-फूल; कहीं वालियाँ! वीच-वीच में वगीचे—कहीं वौरों से लदे, कहीं फलों से लदे। हवा पराग से वोभीली। फिर यह श्रनहद संगीत! श्रहा!

पय-प्रदर्शक — श्रोहो, श्राप कवि भी हैं ! हाँ, हर स्त्री कुछ कवि होती है ! किन्तु यह मायापुरी नहीं, यह तो मायापुरी का पड़ौस है, मायापुरी तो देखिए, वहाँ है।

पुरुष —वह तो कोई नगर-सा है ? कौन सा नगर है ? स्त्री —िकन्तु आप तो हमें गाँव दिखलाने ले आये थे न ? पय-प्रदर्शक—वह गाँव ही तो है !

पुरुष -- गाँव है ? जहाँ के मकान यहीं से यों चमक रहे हैं, शायद कोई नमूने का गाँव वसाया है श्रापने।

पय-प्रदर्शक — नहीं, हमारे सारे गाँव ऐसे ही हैं। बहुत दिनों की बात है। हमारे वापू की एक शिष्या थीं — विलायत की। उन्होंने भारतीय गाँव पर लिखा था कि जब रास्ता पकड़ कर मैं चलती हूँ और दुर्गन्ध से नाक फटने लगती है, तो मैं समभती हूँ, मैं गाँव के निकट आ गई। काग, वह देवी श्राज होतीं! खैर, वह न सही, श्राप तो हैं। कहिये, श्रापकी नाक तो नहीं फट रही?

स्त्री-भेरे तो नाक, कान ग्रीर ग्रांख-सब तृष्त हुए जा रहे हैं, चलिए, हम जरा ग्रापके गाँव को निकट से देखें।

पुरुष — क्या सञ्चमुच ये गाँव हैं ! पंक्तियों में वने ये सुन्दर-सुन्दर मकान ! वीच-बीच में पतली, सुथरी पगडंडियाँ । हर घर के सामने रंग-विरंगी फुलवारियाँ श्रीर, यह शायद विजली भी\*\*\* पय-प्रदर्शक—ही, ही विजली ही तो है। विजली नेतों की पटाती; है, जोतती है, घरों की जगमग करती धौर चौके घर से सारी मनहसिगत को दूर रखती है! यह विजली की कृपा है, जिसने हमारे महरों धौर गांवों के भेद-भाग की सदा के लिए दूर कर दिया है!

पुरुष--- किन्तु गांधी जी तो ग्राम-उद्योगों के पक्षपाती थे न ? फिर ये वैज्ञानिक साधन'''

पय-प्रदर्शक — प्राम-उद्योग का प्रधानती होने का अपं गया वैज्ञानिक सामनों से श्रसहयोग करना है ? बापू ने रेल, मोटर, रेडियो, प्रेन सकता प्रयोग किया था ? जहां विज्ञान मानवता को पीसता है, हम उसे दूर रतते हैं ! विज्ञान को हमने विभाव उद्योगों के एकाधिकार से हटाकर प्राम-उद्योगों में जोत दिया है, उसने हमें रवायलम्बी बनने में प्रजुर सहायता की है । बापू का मुलमन्त्र या स्वावलम्बन । हर व्यक्ति स्वायलम्बी हो, हर कुटुम्ब स्वावलम्बी हो, हर गांव स्वावलम्बी हो भीर-हो सारा साट्य स्वावलम्बी ।

(चर्रे के चलने की धरं-घरं आवाज)

स्त्री—भरे, गया धाप लोगों के घरों में धाउ भी चर्चे चलाये जात हैं ?

पय-प्रदर्शक—नया नर्से को हम कभी भूख मकते हैं ? जिसने हमें स्यराज्य दिलाया, जिसको हमने अपने भंदे पर राम, उसे भूल जाना तो अपने इतिहास को, अस्तित्य को भूल जाना है। किर यापू कहा करने भि, नार्या साथीन अनंकाहम भी भूकी है। धुनी को छोड़ दें, तो गाड़ी पतिनी क्या ?

पुरप-किन्तु चर्चा तो पुराण-पंदिता गा प्रतीक है।

प्य-प्रदर्शक — हमारे नमें चर्च को विलिए, हो किये ! बापू ने अठारहर्वे सदी के चर्च को बीहरी नदी के मोग्य दनाता, हमने उने -इन्तीमधी नदी के मोग्य दना दिया है। हमारा एक चर्चा पूरे परिचार को बहुष-स्नायनम्बी बना देना है। हम बापू के मानून है न ?

(लड़कियों के हैंसने की आवाज)

स्त्री - रोही, हपर महिन्नों आ रही है। तिननी मुदर ?

पुरव—तितिलगों जैसी—

प्य-प्रदर्शक—हां, एप में तितिनगां, किन्तु काम में मधुमिनलयां। हमारी हिन्नयां गुनों से घरेलू कामों पर एकाधिकार रखनी धाई हैं, अब तो वे कृषि प्राटि उद्योगों में भी हमारा हाय बँटाती है!

पुरुष-तव तो श्रापक यहां भी स्थी-पुरुष में संघर्ष होगा ?

पय-प्रदर्शक—जी नहीं। जहाँ घषिकार की वात होती है, यहाँ संघर्ष ! गहाँ तो कतंव्य की वात है। हमारे साहजों ने स्त्री की पुरुष की प्रद्रांगिनी कहा है—सामाजिक और पारवारिक कर्मों का श्राधा वीभ अपने अपर लेकर उन्होंने उसे सार्थक बना दिया है। हमारी नारियों का मादकों माता करत्व्या है— इने धाप न भूलें।

े स्त्री—पूज्य वा ! वह तो संसार की नारियों के निए सदा नमस्य रहेंगी ।

पुरप-हाँ, एक बात ! श्रापके यहाँ कुछ लोग जो हरिजन कह-लाते थे, गांव में उनकी बस्ती किस तरफ है ? जरा उधर तो चित्रये।

पय-प्रदर्शक — ह-ह-ह! आप सुदूर भूत की वात कर रहे हैं। बापू ने कहा था — हमें एक बर्गहीन-अर्णहीन समाज बनाडा है! हमने वैसा ही समाज बना लिया है — हमारे यहाँ न कोई धनी है, न कोई गरीब, न कोई छुलीन है, न कोई अन्त्यज! सब एक साथ रहें, सब एक साथ उपभोग करें और एक साथ राष्ट्र को बलवान बनावें — इस प्राचीन आदरों को हमने नथे सौने में ढाल दिया है। देखते नहीं, गांव के सारे घर एक से हैं। मांव के घर ही एक-से नहीं है, हमारे हृदय भी एक हो चुके हैं।

(दूर से मृदङ्ग-भांभ आदि पा स्वर)

स्त्री-वह ? कोई उत्सव हो रहा है नया ?

पय-प्रदशंक — हमारा हर दिन उत्सव का दिन है। उत्सव से हम दिन का प्रारम्भ करते हैं श्रीर उत्सव से हो दिन की समाप्ति होती है। सन्व्या होने को भाई न? भव 'जन-गृह' में गाँव के स्त्री-पुरुष, वृद्ध-वच्चे, सव-के-सव एकत्र होंगे। वहाँ वृत्य होगा, गान होगा, नाटक होंगे, प्रहसन होंगे। रेडियो लगा है, देश-देश की वार्ताएँ सुनी जायेंगीं — फिर लोग खुशी-खुशी अपने घर जायेंगे श्रीर सुख की नींद सोयेंगे।

पुरप-कितना मुखी सगाज बना रखा भ्राप खीगों ने !

स्त्री—सचपुच, मायापुरी बनाई है श्रापने । मेरी तो इच्छा होती है, यहीं यस जाऊँ !

पय-प्रदर्शक — प्राप दोनों घपनी बात कह गये — पुरुष प्रतिस्पर्दी होता है, नारी घात्म-समर्पिणी । किन्तु हम कहेंगे, घाप जाइये घ्रौर प्रपने देश में बाष्ट्र के इस राम-राज्य का सन्देश दीजिए।

पुरुष — श्रव हम चापन जाना चाहते है, नवा धपन राष्ट्रपति के दर्शन हमें करा सन्तें भ्राप ?

पय-प्रदर्शक—राष्ट्रपति ? राष्ट्रपति हमारे देव में भ्रव नहीं होते। पति शब्द से प्रभुत्व सूचित होता है। हमने उनके नदले, प्रमुख राष्ट्र-सेवक शब्द रखा है। श्राप उनसे भयम्य मिलें। मिलकर भ्राप प्रसन्न हो जायेंगे।

स्त्री--फौन-रो यह सौभाष्यमाली सरजन है, जिन्हें ऐसे राष्ट्र का प्रमुख सेवक होने का गौरव प्राप्त है ?

पय-प्रदर्शक — जिस दिन बापू का अलौकिक बिनदान हुआ, उनके धीक एक दिन पहले उन्होंने प्रयचन किया था कि मैं प्रमप्त तब होजेंगा, जब गाँव में हल जोतने वाला प्यक्ति राष्ट्र के राज्य-मिहासन पर बैठे। एक बैसे ही मजजन हमारे प्रमुख राष्ट्रसेवक हैं — धीर उन्होंने बापू मी एम-स्राया में काम भी किया था।

स्त्री-भर, तां उनकी नवा उस है ?

पथ-प्रदर्शक — मही, १२० वर्ष के लगभग । गापू की दनका भी, यह १२० माल जीयें। यह तो चन बने, किन्तु उन्न की यह धरीहर हमें दे गवे है। हमारे प्रमुग राष्ट्रनेवन उनकी एक्का की पूलि कर मके है, यह हमारे निए तीभाग्य की ही बात है।

पुरव-एक हल दोदने जाना व्यक्ति इस नवीरन पद पर गैसे पहुँचेगा ? गया भागके वहाँ उम्मीदनारों में प्रतिनिद्धता नहीं होंगी ?

पप-प्रदर्शक—एमारे यहाँ चुनाव में कोई उम्मीटबार नहीं होता । बापू नया तनी दिनी पद के उम्मीदबार हुए है मों भी यह हमारे सब कुरा थे। हमने वहीं पद्धति भी है। बापू मी दसनी-दिवन पी हम उत्सव मना कर लौडते हैं, तो इस पद के लिए किसी एक के लिए अपना मत डाल कर । मत पाने के लिए कोई प्रचार करना तो हमारे यहाँ शिष्टता के प्रतिकृत समका जाता है और हमारे राष्ट में कोई प्रशिष्ट नहीं, यह हमारा दावा है।

स्त्री-सब कुछ विचित्र है धापके देश में ! चलिए, हम उनके

दर्शन कर लें।

#### पष्ठम हश्य

(मोटर के भोंपू का शब्द)

स्त्री-नगस्कार!

पुरुष-नमस्कार !

राष्ट्रसेवक -- नमस्कार देवी जी, नमस्कार महोदय ! श्रादये प्रधारिये । अते देख लिया हमारे चापू के राम-राज्य की !

पुरव-देय निया, प्रतन हुआ !

स्त्री—प्रसन्न ही वयों, हम तो विस्मय-विमुग्ध हैं। श्रीर जो कसर ्रें यी, उसे श्रापके दर्गन ने पूरा कर दिया। श्राप गांधीजी के साथी'''

राष्ट्रसेवक—साथी नहीं, साथी नहीं, उनका श्रनुयायी। में तो तय बारह-नेरह वर्ष का था। हाँ, ये श्रांदां धन्य हैं, जिन्होंने उनकी सूरत देखी थी, श्रोर यह दारीर धन्य है कि उन्हे श्रांपित था। देखिए, यह ''

स्त्री--श्रो हो !

पुरुष-अरे!

राष्ट्रसेवक—जब बापू ने १६४२ में क्रान्ति का नारा दिया, मैं बच्चा ही था। एक धाने पर चढ़ाई हुई, उस पर राष्ट्रीय फंडा फहराने के लिए मैं बन्दर की तरह उछल कर जा चढ़ा। नीचे से गोली दागी गई, उसी का यह चिन्ह!

स्त्री-उफ, कैसी यह ववंरता।

पुरव-शासन का मोह हमसे वया नहीं करा सकता है ?

राष्ट्रसैवक—इसीलिए वापू कहा करते थे कि सबसे अच्छा झासन वह है जिसमें कम-से-कम आसन किया जाय। आपने हमारे राष्ट्र में कहीं ऐसा देखा है, जहाँ शासन का कोई दवाव आपको अनुभव करना पढ़ा हो। धीरे-घीरे हम शासन को सिमट रहे हैं और शायद एकमात्र चिह्न यह पद रह गया है, जिसे देकर मुफे सम्मानित गया है।

स्त्री —सेना नहीं, शासन नहीं ! एक विचित्र समाज वना ग्राप लोगों ने ।

राष्ट्रसेवक—किन्तु, यहाँ तक पहुँचने में हमें किन-किन कि का सामना करना पड़ा है, कान, उसे ग्राप लोग जान पाते । उ ने राम-राज्य कहा, लोगों ने खिल्लियाँ उड़ाई—उन्हें खन्ती कहा बताया। हमें उनकी बात कुछ इतनी पागल की मालूम हुई, बर्दास्त नहीं कर सके इन्हें "उक, उनकी हत्या"

पुरुष—हां, वह तो संसार-भर के लिए एक दुःखद घटना हुं गांधीजी ऐसे सन्त का गोली से मारा जाना। लेकिन, क्षमा तो पूछ्य।

राष्ट्रसेवक-कामा ! आप क्या कह रहे हैं यह ? आप पूछ सकते हैं।

पुरव--- वया धर्म का भेद-भाव ...

राष्ट्रसेवक—वस, वस, वस, रहने दीजिए। धर्म का भेद बापू के रक्त से ही धुल गया। हाँ, जो उसका धव्या-सा वच गया भी हमने दूर कर लिया—यद्यपि उसमें प्रयस्त काफी करने प हमारे गर्हो विस्वासों की घिभिन्नता, विचारों की विभिन्नता। कि चहरे एक हैं ? फिर ह्वय थौर मस्तिष्य कैने एक-से होंगे। कि प्रयाग चहरे रसकर भी हम सभी मानव हैं, जुदुम्बी हैं, बाप हैं, पित हैं, पत्नी हैं, बहिन हैं, वेटी हैं, एक-साथ रहते हैं, श्रान् हैं। उसी तरह अलग विस्वाद थौर विचार रसकर भी हम प धौर मानव से रह सपते हैं, रहते हैं।

पुरय-चन्य है भाग और चन्य है जापका देश जहीं नमान प्रस्कुटित हुआ है, को संनार के लिए अनुकरणीय है।

# विप्गु प्रभाकर

श्रादर्श श्रीर यथार्थ को श्रनन्योग्याथित मानने वाले श्री विष्णु प्रभाकर का स्थान दूसरी पीड़ी के एकांकीकारों में श्रयगण्य है। ग्राप मूलतः मानवतावादी एकांकीकार हैं जो श्रपनी कला, श्रिभव्यक्ति श्रीर फलम—तीनों के प्रति ईमानदार हैं। श्रपनी मान्यता है कि मानव न तो यथार्थ के विना खड़ा हो सकता है श्रीर न श्रादर्श के विना जीवित रह सकता है। इसलिए संयमित जीवन के लिए दोनों की श्रावव्यकता है।

एकांकीकार प्रभाकर ने जीवन को देखा है, समक्षा है, उसके अन्तर में पहुँचने का प्रयत्न किया है। परिणाम यह हुआ है कि समाज की कथावस्तु के साथ-साथ जिन पात्रों का निर्माण उन्होंने किया है, उनमें वर्ग के प्रतिनिधित्व की पूर्ण क्षमता है। मानव जीवन के हर पहलू पर उनकी हिट गई है, व्यक्ति के अन्तर्दन्द्व को बड़े ध्यान से उन्होंने मुना है। श्री विष्णुजी के एकांकी उनकी मनोवंज्ञानिक पहुँच की देन कहे जा सकते हैं।

उन्होंने जिस समाज को धपन लिए आधार बनागा है यह है 'मध्यवर्गीय समाज'। अतः उनके एकांकी नाटकों में इस वर्ग के विभिन्न रूप देखने को मिल जाते हैं। जहां विभिन्न यनि के व्यक्ति मिलेंग, वहीं विभिन्न यनि के व्यक्ति मिलेंग, वहीं विभिन्न यनि के व्यक्ति मिलेंग, वहीं विभिन्न संस्कारों और परिस्थितियों का अतिपादन भी मिलेंग। निष्णु जी का प्रयस्त रहा है कि उत्तक्ष्मतों श्रीर संघर्षों को समस्या मान करहें दिया जाव वरम् उन्हें स्पष्ट करने का प्रयस्त भी होना पाहिए।

दनके समस्त एकांकियों को हम पाँच वर्गों में बांट सहते हैं। (१) सामाजिक एकांकी, (२) मनोवैज्ञानिक एकांकी, (३) राजगीतिक एकांकी, (४) हास्य श्रीर व्यंग प्रधान एकाकी, तथा (१) पौराधिक-ऐतिहासिक एकांकी। नभी एकांकियों के विषय में यह बाहा दा सकता है। कि विष्णु जी की भीतरी गमता ने उनमें शाकार पा लिया है।

# जज का फैसला --

[प्रारम्भिक संगीत के बाद रेल के तेजी से आने का स्वर, कुछ क्षण बाद यह स्वर घीमा पड़ता है, किर घीरे-घीरे बिल्कुल कर जाता है। सीटी की आवाज उठती है, किर यात्रियों के स्वर उठते हैं—"क्या हो गया ?", "गाड़ी क्यों कक गयी ?", "जंगल में गाड़ी कैसे राड़ी हो गयी ?" किर खिड़कियाँ खुलती हैं और एक सैकण्ड क्लास के डिब्बे में स्वर तेज होते हैं।]

इंजिनियर—यह तो गाड़ी रुक गई! क्या बात है? (खिड़की पोजता है।)

प्रोफेसर—हाँ, गाड़ी यहाँ कहाँ एक गई ? (जीसे कोई दूर देखता हो) कोई स्टेशन तो नहीं दिखायी देता।

जज-स्टेजन नहीं है, तो श्रीर पया है ?

इंजिनियर—जंगल ! एकदम जंगल है ! गाड़ी पहाड़ियों में से गुजर रही है । झाने सतपुड़ा का बलान है ।

श्रोफेसर-तय तो स्टेशन श्रभी दूर है।

जज-मोपेसर, श्राप नीजवान हैं। जरा देखिए नी, गया वात है ? फहीं कोई एगसीटैंंं वेंद्र तो नहीं हो गया !

इंजिनियर—नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं दिसायी देती। हाँ, बक्त बड़ा गराय है। प्रंधेरा गहरा होता जा नहा है। पहाड़ियाँ भूत-मा जान पड़ती हैं।

जन-(हेंसकर) धोर इन भृत-सी पहादियों में जिन्स भूत भी उहारे है।

प्रोकेसर-च्या मतत्त्व ? क्या धार पर्ना चारते हैं कि र जन-नहीं-नहीं, में ऐसा कुछ नहीं चहना चारता । सूटमार का जमाना घव बीत गया । यह शान्ति का युग है । इंज़न में कुछ गड़बड़ हो गई होगी ।

प्रोफेसर—में ग्रभी देखता है। (पूबता है) नोग इंजन की ग्रोर

जा रहे हैं। (दूर जाता स्वर) ग्रभी पता नग जाता है।

इंजिनियर—आप ठीक कहने हैं। ट्रेन रोक नेने वाने उाकुश्रों का श्रव कोई उर नहीं है। हो, कभी-कभी पहने या दूसरे दर्जे के डिक्यों में कोई दुर्घटना हो जाती है, पर उसके निए गाड़ी रोकने की बेवकूकी कौन करेगा? (हँसता है)

जज-(होसकर) इंजिनियर नाह्य ! श्राप भी कहाँ पहुँच गये ! श्रदे, कोई भैस या ऐना ही कोई यहा जानवर लाहन पर श्रा

गया होगा।

ईजिनियर—श्रीर नामद कट गया होना । हाँ, यस यही बात है। केकिन उसको हटाने में नाफी देर लग नकती है। देगूँ, श्रोफेसर कहाँ पहुँच गये। (विराम) दिसायी नहीं देते। लोग गय लौट रहे हूँ। सब के मुँह लटके हुए हैं। क्या बात है?

जज—िक्सी से पूछी न ! प्रमना जिल्ला भी नवने पीछे पड़ गया । इंजिनियर—लो, वे प्रोफेसर आ गये। (पुकारकर) हलो प्रोफेसर ? गया खबर है ?

प्रोफेसर—(दूर से) खबर तो कुछ प्रच्छी नहीं है ! (पास प्राकर) आगे कही स्टेशन से इस थोर मालगाड़ी का डीरेलमेण्ट हो गया है। उससे लाइन में कुछ सराबी हो गई है। ठीक करने में देर लगेगी।

इंजिनियर-देर का मतलय कि कुछ घण्टे लगेंगे।

भोफेसर—नग सकते हैं। कुछ भरोसा थोड़े ही है। मेरे साथ पहले भी एक-दो बार ऐसा हो चुका है। ग्रभी पिछले वर्ष की बात है, बम्बई जाते हुए कोटा जद्भगन पर छः घण्टे पड़े रहना पड़ा था।

जज-छः घण्टे ! तव तो सबेरा हो जायगा ।

इंजिनियर—अब कुछ भी हो। जो होगा, वह भुगतना पड़ेगा। खुनी इस बात की है कि कोई दुर्घटना नही हुई। द्यायद श्रापको याद होगा, एक बार इसी स्थान पर भयद्धर रेल दुर्घटना हो गई थी। जज—मुक्ते मालूम है। उसमें सगभग सी व्यक्तियों को जान से हाय पोना पटा पा।

इंजिनियर-वेगक ! मैंने वह नव अपनी श्रांतों से देशा पा।

प्रोफेसर—वया मतलब ? क्या धाप भी इस ट्रेन से नफर कर रहे थे ?

इंजिनियर-जी हां !

जज—तय तो धाप गुमिकमात है। वह तो ममूची द्रेन पड्डे में जा गिरी थी। धाप कैंसे बचे ?

इंजिनियर—कैसे बचा ? यह तो में भी नहीं जानता। इस बच गया, इतना नालुम है।

प्रोकेसर-- उतना तो हमयो भी मालूम है। श्राप हमारे सामने बैठे हैं।

इंजिनियर—(हेंसकर) आप कहें, तो इनका एक और प्रमाण दे सकता हैं।

प्रोफेसर--यह नया ?

इंजिनियर— वह यह कि मैंने बीमा क्यानी में रुपये वसूल किये थे। प्रोफेसर—मई सूथ ! आपने एक धार तो मौत की छत्ताया, दूसरी स्रोर रुपया भी बसूल किया। कैसी घद्भुत बात है!

जग-गह नया घर्मृत बात है ! घर्मृत बात में जानता है !

भोषेसर—धाप जानते हैं ! बानी बाप भी उस दुर्घटना के गवाह हैं ?

जज-नी नहीं, मैं किसी दुर्घटना सा सवाह नहीं हैं, पर एक भगदूर रेल-दुर्घटना से सम्बन्ध रणने वाले एक श्राहीयो-नरीय मामले का फीमला मैंने सबस्य किया है।

प्रोफेसर—शापका मतलब शायद रेल को गिरान या सूटने पाले किसी पड़नन्य से हैं!

जस-नहीं दोला ! में किसी चोर. यह या पट्यात्र की घरत नहीं कर रहा। यह साधारण इसान की दात है। पर दही मनोगी बात है। इंजिनियर-चनोभी बात है, तो मुनाइक्। यक ही कटेगा। जज-मुनाने के लिए ही तो मैंने बान पुर मी है। (बिराम) जिस युर्घटना का मैंने अभी जिल किया है, उनमें तथाह होने वाली हैन में जो याथी मफर कर रहे थे, उनमें एक महिला भी थी। उनकी मात्री हुए कुछ दिन भी नहीं बीने थे, वह अपने पित के नाथ दक्षिण की याथा पर निक्ती थी। यह निहायत सूबसूरत थी। उनके तस्त्रे-पाने, नील-नयन, तिल के फूल ने नामा-पुट, गुलाव-ना किया हुएग मुलाह, जिनित भूरे-समन्त्रेण देयकर भूग मिहतों थी। उनके जिल्हें में केवल यो याथी और में। इनलिए उनकी मोहब्बन की दुनिया में चैन ही चैन था। उन्हें नहीं मालून था कि गाडी तेजी ने उनी जा रही है, कि दिन का देवता यकान महसून करने लगा है। प्रेम की दुनिया में न उत्राहे, न मरण और न थरान। पर बुद्दरत ना नाहून मोहब्बत की विद्या में भी ज्या है। पर का मरण हो हिन्दी से स्वा की विद्या के बेच वीने याथी कैयने नमें, पर प्यार की दुनियों में खोये हुए उन दो प्रेमियों पर काल में वह मोहिनी गुल प्रभाव न डाल माने। ये बराबर प्रेमानाम में ममसून रहे। परनी ने कई बार कहा-

(फेट-इन, पित-पत्नी, चलती ट्रेन, मीटी का स्वर, प्रेमालाप) विमला—श्रव तो श्राप मो जाट्ये। बहुन रान चीत गई है। प्रकारा—रात तो मदा आती रहनी है, परन्तु प्रेम के ये क्षण बार-बार नहीं श्राने, विमला। श्राज मुक्त पर नीद नी परियों का जादू नहीं

चनेगा।

विमला—(हॅमकर) मुक्ते नहीं मालूम था नि श्राप फवि भी हैं। प्रकाश—(हॅमकर) था तो नहीं, पर थव हो गया हैं। तुम्हारा परस ही ऐसा होता है। देखों न, तुम्हारा मंग पानर लोहें की ट्रेन भी कैंसा गाना गा रही है? कितनी समरनता है जसके ताल-त्रय और स्वर में?

विमला—जैसी पनके गाने में होती है (खिलखिलाती है) या फिर जैसी शिव के ताण्डव में होती है।

प्रकाश—नहीं प्रिये ! इसमें बही नमरनता है, जो पार्वती के लास्य में होती है।

विमला—(श्रीर भी तेज हुँसी) पार्वती का लास्य ? प्रियतम, श्राप सपनों की दुनिया में हैं !

प्रकाश—सपनों की दुनिया ? हाँ यह सपना ही तो है ! तुम क्वयं एक सपना हो ! यह रात भी एक सपना है—एक मधुर मादक संगीत से पूर्ण सपना ! रात का संगीत हमेशा सपने का गंगीत होता है । बाहर भांको ! देखो ! समुद्र की लहरों में चंचलता भर देने वाला यह चाँव प्रपत्ती पौन मुसकान से घरती पर श्रमृत खेंडेन रहा है । उसमें स्नान कर प्रकृति मस्त हो उठी है । पहाड़ियाँ एकटक श्रासमान के रूप को निहार रही है ।

ेबिमला—(प्रभावित होकर) वैसे ही, जैसे में अपने प्रियतम की

निहारा करती है।

प्रकाश—( शरारत ) कीन है तुम्हारा प्रियतम, विमला ! विमला—( शरारत ) कोई है, तुम्हें क्यों बनाऊँ ? प्रकाश—क्योंकि में ही वह त्रियतम हैं।

विमला—क हैं; तुम तो प्रकाश हो !

प्रकाश-मेरी शांसों में भांको और बतायो !

विमला-वहाँ तो में हूँ।

प्रयाश-मेरे हृदय में देखी।

विमला-उसकी प्रत्येक बड़कन में मेरा स्वर है, प्रकाश !

प्रकाश—तो फिर भपना हृदय टटोलो, विमल !

विमला—( हुँसकर ) यहां रहता है भेरा प्रियतम !

प्रकाश—( हंसकर ) तो फिर मुक्ते धवनी धारों में क्रांकने यो !

विमला—( जोर से हॅसकर ) हुटो, हुटो, धन सो जासी ! मुके

भी सोने दो ! सपनों में अपने त्रियत्तम से बातें नर्हों।

प्रकाश-मन भी पुरत है, बह तथा सपने से कुछ भिन्न है, विमन ?

विमना—सद जो कुछ है, नह सब सत्य है, प्रकाय !

प्रकाश--तो किट मुक्ते सपने नहीं चाहिए। में सहय नाह्वा हैं। मैं सुम्हें चाहता हैं।

विमला-प्रोह, गेरे त्रियतम ! मेरे प्रकाश !

की याद दिला दी। मेरा दिल कैमा घड़क रहा है! मुफे लगता है जैमे दुर्घटना सभी घट रही है। लगभग इसी समय धौर हनी स्थान पर तो वह दुर्घटना घटी थी।

प्रोफेसर—नवमुन, यह निजंन, यह रात शीर यह भयंकर हुर्गटना ! कल्पना-मात्र से रोंग्टे खड़े होते हैं, श्रीर वे दोनों श्रेमी ! उनके नयं जीवन की उमंगें िललने में पूर्व ही मुद्रमा गर्ड । मपना शाने से पहले ही नींद गुन गर्ड ! दोनों श्रकाल में ही मर गये !

जज — नहीं, मेरे दोन्त ! वे दोनों मरे नहीं ! प्रोफीतर — योनों नहीं मरें, तो नया एक मरा ? जज — एक भी नहीं !

प्रोफेसर-( चिकत ) एक भी नहीं मरा?

जज-हौ, ये दोनों बच गये, जैसे इंजिनियर माहब यच गये थे। प्रोफेसर-(प्रसप्त होकर) तो ये दोनों मुशक्तिस्मत थे।

जज — ये खुशिरस्पत थे मा वदिष्टमन, यह कहानी पूरी होने के बाद ही महा जा सदना है। हो, वे बच गये थे। उनवी मिनती मुखों में महोगर, घायलों में हुई थी। मिस्टर प्रकाश के धरीर पर अनेक पाय थे और वे मय गाधारण थे, लेकिन धीमती विमना के जरम बहुत गहरे थे। उनके दाहिने पैर की गुर्धी हुट गई थी। उनके मुख पर बाकी भीर मिर से सेकर होड़ी तक एवं बड़ी दरार पर गई थी।

ब्रोफेसर-व्यार १ उपः !

जज — केवल वरार नहीं, उमना मारा तेहरा पावों ने भरा हुया था। यो दिन तथ उमें होश नहीं प्राया। जब याया, तय यह देश नहीं महती थीं। उसके गारे मुख पर पहिमाँ वेंधी हुई थीं। वह न हिल गणती थीं, न हुन नकती थीं। नीम-बेशीशी में यह बग यही प्रारती रहती थीं।

### (फेंग्र-इन, विमता)

विमना—(कृतकुमाहट) प्रकाश ... प्रशास ... तुम कर्त हो ... तुम कर्रा हो ? (चेला क्वर) प्रशास ! तुम बोलने क्यों नहीं, बोलने वर्षे नहीं ? करों हो तुम ?

नर्ग---न, न, निनेत विमता ! शेटो नन । प्रशास शिक है, पर थमी उठ गरी सहते; उस एए-यो दिन में वर्ती का रहे हैं।

विगल-(वीमी गुबकी) नहीं ही तुम प्रकास ! प्रस्तव !! नमें--(एतर ने) बन, यह छाने वाले है। बाने ही बाले है।

विगला-(धामा होता स्वर्) प्राप्तापार (ज्ञानि)

मर्स-(स्थान) फिर पेरीमी। उन्ह ! मना दिल्लमी है ? बगा में मना हो गता ? यह भारत किया; यो क्या संतिनी उस पर ' दिनती स्वमूरत थी भीर स्वाप्ताम । वह भर क्षेत्री ।

#### (डास्टर का प्रवेश)

द्याग्टर-नर्भ ! पना हाल है मनीन पन ?

नर्स-वर्ग धेंगेरे घोट राजनी का रेन है। जारती है, की बग प्रवास को पुतारकों है भीर उसता नाम रहनी-रहकी दिल नेहीन ही जाती है।

द्यावटर-(पाँज) तो प्रयास की चुनाना पड़ेगा। नसं--(फांपकर) प्रावटर !

डास्टर-कुनाना शुं गड़ेगा ! हाल्टर हा फाम मर्गेज की जिल्हा रसना है, नर्स !

नसं—नेकिन डाक्टर ! यह इसे देवेगा, मो ?

टापटर-(गम्भीर) तो उनके दिन को देन लगेगी। में नव नृद समभता है, नर्न ! पर इसके बचने का गर्नी सकता भी तो नहीं है। (पाँन) प्रकास दी ह है, में उसे समस्य देखा ।

नसं-रायदर! क्या तुम्हे विस्थान है कि वह नमक जाएगा ?

डायटर-नर्न ! हमारा नाम प्रयत्न करना है। (पाँत) घीर यह हुमंटना तो जैसे हमारी परीक्षा लेने के लिए हुई है। उक्त ! इतनी तबाही ! इतना खीकनाक हादसा ! बहुत-कुछ देखा है, पर इमका तो ध्यान माते ही रोंगटे साड़े हो जाते हैं। यह कसाहट ! यह जिन्दगी का तर्वना ! बीमारी सही जा सकती है, पर अपनों मी याद मोर उन पर पट्ता भीत का साया'''उफ ! उक ! यह नहीं महा जा सकता ।

नर्स-प्राप ठीक कहते हैं, डाक्टर !

डायटर—(एकदम) भ्रच्या नर्स ! कुम उनकी देख-भात करो ? हमारा काम रने जिन्दा रचना है। (हैंस पड़ता है) हमारा काम सब को ठीक करना है (तेब हैंसी)

(फेट-आउट)

जन—(गहरा निश्वास) घ्यर विमना की यह श्रदस्या थी, उधर प्रकाश की बेचेनी बद्द रही भी। वह प्रति धण उसके पास श्राने को तड़-पड़ाता रहता था। डाक्टर नहीं नाहते में कि वह भनी श्रपनी पतनी को थेने, पर कब तक ? वे उसे कब सक रोक नकते थे!

प्रोपेसर—जहाँ इतना प्रेम हो, वहाँ तो क्षणों का वियोग भी भारी हो जाता है, फिर वे तो एंगी हानत में जुदा हुए थे।

इंजिनियर—यह हानत ! जज माह्य ! उस रात मैंने जो भीत-पुकार मुनी थी, घरपताल में पीड़ा की जिस तरह कराहते देखा था, उससे में उनकी हानत का कुछ अनुमान कर मकता हूँ । उक ! यह गोफनाफ खेंचेरा, यह मीत की भयानक हंसी, इंसान का यह धार्तनाव !

जज—में जानता है, में जानता है, पर प्रकाश के पाय बहुत गहरे नहीं थे। उमे दिमला के पान ले जाया जा सकता था श्रीर उसे ने जाया भी गया। लेकिन विमला के टायटर ने एकाएक उमे विमला के पाम ले जाने की शाशा नहीं थे।

#### (फेड-इन, डाक्टर)

शबटर--- मि॰ प्रतास, तुम समज्ञार हो ! तुम्हें कुछ भीर सब करना चाहिए! विमला की हालत भ्रभी ठीक नहीं है।

प्रकाश—धीण नहीं है ! यह तो में भी जानता है । पर क्या सभी नक्क होन भी नहीं भागा ?

टाष्टर-होत नो पा गमा है, पर

प्रकाश-पर की विन्ता भाष मुक्त पर कोड़ दीजिए ! मुक्ते उनके पाम के विषय !

वापटर-ने हो। वनना परः

प्रकाश-(भाषादेश) किर यही पर ! टाम्टर, यह भेरी पन्नी है।

डाक्टर-(मुस्कराकर) जानता हूँ, मि० प्रकाश !

प्रकाश—तो फिर क्या वात है ? क्या उसकी हालत इतनी खराव है कि...

डाक्टर—इतनी खराब होती, तो ग्रापको जरूर ले चलता। उनके ग्रच्छे होने की पूरी ग्राशा है, पर...

प्रकाश—(एकदम) फिर वही पर ! श्राखिर श्राप कहना क्या चाहते हैं ?

डाक्टर--यही कि श्रापको देखकर उनकी हालत खराव होने का डर है!

प्रकाश-(चीलकर) डाक्टर !

डाक्टर-मिं ठीक कहता हूँ, प्रकाश बाबू !

प्रकाश—(रुआंसा) मुभे देखकर उसकी हालत खराव होने का हर है! मुभे जो उसका पति है, जो...(एकदम) पर डायटर ! क्या वह मुभे पहचान सकेगी ?

डाक्टर — प्रकाश वावू (पाँज) प्रकाश वावू ! ग्रापको सव-कुछ वताना होगा ?

प्रकाश—क्या ...क्या बताना चाहते हैं, श्राप ? जल्दी बताइए ! डाक्टर—तो मुनिए, प्रकाश वाबू ! श्रापकी पत्नी के मुख पर बड़े जरुम हैं। श्रभी कई दिन पट्टी नहीं खुल सकती।

प्रकाश-(चिकित) मुख पर गहरे जस्म हैं ? कई दिन पट्टी नहीं खुल सकती ?

डाक्टर-हाँ, प्रकाश वावू !

प्रकाश—(एकदम) लेकिन डाक्टर ! मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता । मैं उसे देखना चाहता हूँ । उसे, जो मेरी पत्नी है ! डाक्टर, मैं विमला से प्रेम करता हूँ, उसके मुख से नहीं, (स्वर रूँघ जाता है) डाक्टर ! ग्राप भी मनुष्य हैं ! आप भी किसी को प्यार करते हैं । धापकों भी वे दिन याद होगे जव...जव (सहसा रो पड़ता है ।)

डाक्टर--(कोमल सान्त्वना के स्वर में) प्रकाश वावू ! प्रकाश वावू ! न, न रोइए, नहीं ! श्राप पुरुष हैं। प्रकाश—पुरुष हैं, तो नमा पत्थर हैं, डाक्टर ? गया मैं फुछ अनुभय नहीं करता ?

डाफ्टर-में यह नहीं कहता, में यह नहीं कहता !

प्रकाश--ती वया कहते है ?

टाएटर-एहीं कि में भागको वहाँ से चलुंगा।

प्रकाश-(एकवम) टाक्टर !

डाफ्टर-हां, में भाषको यहाँ ले चलूंगा, पर एक रातं के साम ।

प्रकाश— उसे देनने के निए में कोई भी बर्त मानने को संयार हैं। डायटर— तो मुनिए, मिस्टर प्रकाश ! माप अपनी पत्नी को देन

तो सकी, परन्तु बात नहीं फर सकी।

प्रकाश-(ठगान्सा) बात नहीं कर सक्षा ?

डायटर-- जी नहीं, उसे यह भी पता गहीं नगंगा कि धाप उसके पास है।

प्रकाश-यह भी पता मही नगेगा ?

शायटर--वहीं, वह देश ही नहीं सकती !

प्रकाश-(कांपकर) समस्य

आपटर--श्रभी ती गहीं बात है, पर में भाषको विस्थास दिलाता है, यह ठीक हो जाएमा ।

प्रकाश-(ध्रमाना) घट्छा, अवटर ! घट्छा ! मुक्ते गव पूछ मंदूर है।

टाक्टर--तो छाहए।

(पाँत, वई धाए। दोनों का चतना, बातें करना)

शबदर-पर सामने जमी गा कमरा है। एक नमें उसके पास है। बराबर पाम रहती है।

प्रकारत—वत् मुभी पुनारती है, टाक्टर ?

हातहर-पारको ही मुनारकी है, पर याप यपनी नर्न गाद राजि है सभी के भने के निष्कें सारके पह पन गह रहा है।

प्रकाश—संग समझता है, धाउटर ! भे सब कुछ मससता है। भे उसे पना भी कही समये हुँगा। डाक्टर-मुक्ते यही आशा है। लो हम आ गये। (पुकारकर) नर्स !

नर्स-(पास भ्राकर) यस, डाक्टर ! डाक्टर-नर्स ! श्राप हैं प्रकाश बाबू । विमला को देखने श्राये हैं । नर्स-लेकिन

डावटर--ये सव-कुछ जानते हैं। उसे पता भी नहीं लगने देंगे। जाइए प्रकारा वाबू! ग्रन्दर ग्रापकी पत्नी है, केवल ग्रापकी पत्नी!

## (पॉज, पद-चाप, पॉज)

प्रकाश—(उच्छ्वसित स्वर) वि"म"ल"
नर्स-(मना करती हुई) शी धी शी वोलिए नहीं !
प्रकाश—(संघर्ष करता हुग्रा) विमल"(सिसकी) वि"वि"
नर्स-नहीं, नहीं प्रकाश बाबू ! सँभालिए अपने को, सँभालिए ।
प्रकाश—(हांकता-सा) वि"म"ल ! वि"म"ल"अ

(शब्द मिटते-सिटते वह गिर पड़ता है)

नर्स—(काँपकर) थ्रोह ! डाक्टरः डाक्टरः डाक्टरः क्याः क्या प्रकाश वासू वेहोश हो गये प्रश्नोह ! विमला—(धीरे-से) कौनः गिरा ? नर्स—कोई नहीं कोई नहीं गर्मे गिर गई थी।

विमला — लेकिन श्रभी किसी ने कहा था प्रकाश '''उन्हें बुला दो। उन्हें बुला दो। वे आये हैं।

नर्स-वे श्राने ही वाले हैं। वस दो-चार दिन में श्राने ही वाले हैं। (पॉज, बन्तर-सूचक संगीत)

डाक्टर—प्रकाश वावू, प्रकाश वावू ! श्रांखें खोलिए ! प्रकाश—(निःश्वास, चिकत स्वर) में कहाँ हूँ ? डाक्टर—ग्रस्पताल में ।

अकाश-अध्यताल म । प्रकाश-अोह, डाक्टर ! आप"सममा"में वेहोश हो गया था। डाक्टर-ऐसा हो ही जाता है, प्रकाश वाबू ! ऐसा हो ही जाता

है। भ्राप अपने को सँभालिए।

प्रकाश-में ठीक हूँ, डाक्टर ! लेकिन ः लेकिन डाक्टर । क्या श्राप समभन्ने हैं कि मेरी पत्नी ठीक हो जाएगी ।

डाक्टर-ठीक नयों न होगी !

प्रकाश—नहीं, नहीं ऐसे नहीं; श्राप मुक्ते साफ बताइए। मुक्ते बतलाइए मत।

डायटर—(पाँज, फिर सहानुभूतिपूर्ण स्वर) प्रकाश वायू ! में गलत नहीं कह रहा। ग्रापकी पत्नी के प्राण तो वच जायेंगे पर'''(पाँज)

प्रकाश—(जतावला) पर पर बया डाबटर ! (पॉज) बताइवे, डाबटर !

डायटर-(गम्भीर स्थर) पर प्रकाश बाबू ! उनका एक पैर कट गया है। शायद एक शाँख भी जाती रहेगी श्रीर''

प्रकाश—(भय) घोर…

खावटर--भीर मुँह टेड़ा हो जाएगा ?

प्रकाश-(वर्ष और फुसकुसाहट) पैर कट गया ! एक धांत जाती रही ! मुंह कुछ देड़ा हो जाएगा !

डाक्टर--मुक्ते बहुत श्रक्तांस है, प्रकार बावू ! बहुत श्रक्तांस है ! (पॉज) चार दिन पहले श्रापकी पत्नी कितनी सुन्दर थी, पर अव " श्रव श्रापकी सग्र करना होगा । श्रीर कोई चारा नहीं !

प्रकाश—(पानल-सा) धीर कोई चारा नहीं ! कोई चारा नहीं ? हायटर— नहीं प्रकाश वाबू ! और कोई चारा नहीं ! मैं जानता हैं, भाप उससे मोहब्बत करते हैं । धाप बहादुर हैं ! भाप धपने की सँभानिये ! श्रच्छा, में चला । गुढ नाइट !

प्रकाश—गृष्ट नाटट ! (पाँज, निश्चास, फिर बड्बड्राता है) कोई चारा नहीं, तब करना चाहिए। धापको पत्नी कितनी नुन्दर घों। एक पर कट गया, एक छाँच जाती रही, मुँह फुछ देड़ा हो जायगा। नूब-मूरत, सुन्दर, पाव, टेड़ा मुख, एक पैर, एक छाँच, पाव! (हँसता है) गुन्दर, पाव, सुन्दर, टेड्रा मुख (हँसी धीरे-धीरे तेज होती है) गुन्दर, पाव, टेड्रा मुख। (सहसा रीने तगता है) विमन निजनी मुन्दर, एक पैर फट गया, एक घाँच जाती रही, मुख टेड्रा हो गया!

## (घीरे-घीरे फुसफुसाहट में परिवर्तित होता है, फिर फेड-आउट) (फेड-इन, जज साहब)

जज नह रात भर इसी तरह वड़वड़ाता रहा श्रीर रोता रहा। उसने किसी से कुछ नहीं कहा, पर उसकी हरकतें पागलों की सी होने लगीं। वह डाक्टरों के लिए एक समस्या वन गया, क्योंकि वह वास्तव में पागल नहीं था। श्राखिर उन लोगों ने उसे घर भेजने का निश्चय किया। जब उसे यह वात वताई गयी, तो उसने भी कोई ऐतराज नहीं किया। सिफं जाने से पहले एक बार श्रपनी पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट की।

प्रोफेसर-और उसकी यह इच्छा मान ली गई?

जज—हाँ, दोस्त ! वह मान ली गई। श्रीर डाक्टर ने उसे पत्नी के पास ले जाने का वह श्रवसर चुना, जब वह गहरी नींद में सो रही थी उसे कुछ, नहीं मालूम था। वह उस दिन न कांपा, न गिरा, बल्कि निहायत संजीदगी से उसके विलकुल पास जा खड़ा हुग्रा। कई क्षण मीन, विना हिले, विना डोले, वह एक-टक उस श्रस्पन्दित लोथ को देखता रहा, फिर-फिर सहसा उसने हाथ उठाये।

#### (फेड-इन, नर्स)

[पॉज, फिर नर्स का व्ययता से बोलना]
नर्स-(धीमा स्वर) न, न, प्रकाश वावू ! छूइए नहीं ?
प्रकाश-नहीं छूजें ? श्रच्छा, नहीं छूजेंगा ?

[पाँज, फिर नर्स का व्यग्रता से वोलना]

नर्स-प्रकाश बावू ! ग्राप फिर छू रहे हैं ! नहीं-नहीं, वह जाग जाएगी !

प्रकाश—वह जाग जाएगी, वह जाग जाएगी, वह जाग जाएगी ! तो ''तो वया डर है ? मैं त्राया हूँ, में ! (एकदम) नहीं-नहीं वह सो रही है; उसे सीने दो, उसे सीना चाहिए ! सीना चाहिए !

नर्स—(व्यग्रता)—शी...शी... आप जोर से न वोलें! प्रकाश वावू, आप उस पर मुकें नहीं!

प्रकाश-केवल एक वार उसे छू लूँ ?

नर्स-नहीं-नहीं, अब नहीं, चलिए, श्रागे न बढ़िए, क्या करते हैं ? (आगे बढ़ती है)

प्रकाश—(पागल-सा) रुको, नर्स ! में उसे मुलाना चाहता हूँ । वह सुन्दर है, उसका एक पैर, एक श्रांख, मुन्दर घाव, सुन्दर मुस (तेजी से हसकर) नर्स, उसका मुख बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर ! (वांत भाँचकर) तुमने देखा है, उसका मुख ? नहीं देखा, नहीं देसा, नर्स, देखो !

### (श्रट्टहास, नर्स चीखती है)

नर्स-वया करते हो, पीछे हटो, पीछे हटो, टावटर ...डावटर ! प्रकाश-(यही अट्टहास) सुन्दर टेड़ा मुख, सुन्दर घाय, हा-हा-हा ! (भयानक हॅसी, संघर्ष, पत्नी की चीछ)

नसं—डायटर, डायटर, घरे कोई दौढ़ो ? प्रकाम ने विमला का गला घोंट दिया ! दोड़ो !

डायटर-(भागता आता है) क्या है ? क्या हुमा ? (भोड़ का कोलाह्त)

प्रकाश—(हाँफता-सा) थव ठीक हैं, नुम्हारी बेदना सहम हो गई, नुम्हारी सुन्दरता थ्रमर हो गई ! (कुछ शान्त होकर) टाक्टर ! थ्रव में कहीं भी चलने को तैयार हूँ, कहीं भी !

### (दुशान्त संगीत के बाद फंड-आउट)

जज—(वेदना-मिश्रित स्वर) श्रीर श्रपनी परनी की हत्या के धपराध में वह गिरफ्तार कर निया गया। इस पर मुकरमा चला, एक लम्बा मुकदमा, एक विचित्र मुकदमा!

पंजितियर—विचित्र...डफ ! वह भयानक मुक्त्यमा होगा। प्रोफेसर—भयानक ! उक ! कितना उदिल है मानव-चरित्र ! प्रजितियर—पौर इसी जिंदन केत का भावने फेसला जिया ? जज-जी हों !

प्रोपेसर--गुके विस्तान है कि अन्त में आपने उने छोड़ दिया होगा। जज-मेरे नवयुवक दोस्त ! में ग्रापसे पूछना चाहूँगा कि ग्रगर ग्रापको इस मुकदमे का फैसला करना पहला तो…

प्रोफेसर—तो में उसे छोड़ देता। विलहुस छोड़ देता। में उसके साय ग्रन्याय नहीं कर सकता था!

जज-मंने भी नहीं किया, मेरे दोस्त ! में भ्रन्याय कर ही नहीं सका। मेंने उसे फाँसी की सजा दी !

प्रोफेसर-(कांपकर) फाँसी !

इंजिनियर—फाँसी ! आपने उसे फाँसी दी ? (गाड़ी की सीटी, पूरुभूमि में शोर, "गाड़ी चल पड़ी, गाड़ी चल पड़ी"!)

कज—(वही गम्भीर स्वर) हाँ, मैंने उसे फाँसी की सजा दी। इसिलए दी, कि वह जिन्दगी-भर श्रपने सूनी हाथों को देख-देख कर तड़पता न रहे। दोस्तो ! उसे जिन्दा रखना उसकी पवित्र भावना का अगमान होता !

[फिर सीटी होती है श्रीर गाड़ी चल पड़ती है। शब्द छस शीर में यो जाते हैं।]

## डा० रांगेय राघव

डा० रांगेम राघय का नाम प्राज हिन्दी-जगत् के लिए नया नहीं रह गया है वरन् इनके अनवरत परिश्रम तथा कमंठ प्रवृत्ति के सभी कायल हो चुके हैं। श्रापने हिन्दी में लेसन-नार्य को प्रपने जीवन का उद्देश्य बना निया है। हिन्दी की कोई भी विधा श्रद्धती नहीं है जिसमें श्रापने प्रयोग न किये हों श्रीर साथ ही श्रापको सफलता न मिली हो।

श्रापने कई एक नाटकों, उपन्यासों, कहानियों तथा श्रालीचनात्मक निवन्धों से हिन्दी-डोत्र की सेवा की है। यों घाप राजस्थान के रहने बाले हैं पर शिक्षा-दीक्षा के कारण आगरा को श्रपना केन्द्र बना निया था। इन दिनों श्राप भरतपुर में रह रहे हैं।

नवीदित प्रतिभातम्पन्न साहित्यकारों में श्रापका स्वान श्रमण्य है। श्रापने अपने नाटकों श्रीर साहित्य के लिए सामग्री पौराणिक कयानकों, इतिहास तथा समाज की वर्तमान परिस्थिति से ली है तथा एक समर्क श्रातोचक की भौति समाज के अन्तर्ज न्द्र को पहचानने का प्रयस्त किया है। भाषा सरत परन्तु चुभती हुई श्रीर चोट करने वाली है जिनमें पोठक का व्यक्तित्य श्रपने श्राप सिहर उठता है।

#### नाटक का प्रारम्भ

शिग के दोनों पर पुलते हैं। ब्रह्मलोक में ब्रह्मा, चतुरानन नहीं, एक मुख वाला, उवास-सा घूम रहा है। तीसरे पर पर जल्दी-जल्दी प्रकाम पड़ता है, और बुक्त जाता है। यह ब्रह्मा की दृष्टि में दिन और रात का हिसाब दिखाने को काफी है। कुटलाइट महिम हैं।]

ग्रह्मा—दिन ग्रीर रात !! रात ग्रीर दिन !! मेरे हो बनाय हुए, दोनों ही किस स्थापक वेग मे भागते चले जा रहे हैं। किन्तु ग्रपनी ही स्रष्टि में गेरा भानन्द ग्राज एक ग्राथय क्षोजने के निये व्याकुन हो उठा है।

[नेपस्म से जब पर्वे पर प्रकाश पड़ता है तब श्रादान श्राती है :] जितामह ऋह्या ! श्राप नयों स्थाकृत हो यये हैं ?

प्रसा-कीन है ? मूर्य बीन रहा है ?

[प्रकाश चला जाता है। ग्रन्थकार हो जाता है। स्त्री-स्वर श्राता है—]

ही पितामह ब्रह्मा ! यह नूर्य ही या । श्रनन्त प्रकास में भागे चना गया है । में रात हैं । श्रापके, महाविष्णु के श्रीर शिव के लोक में तो हम मिका रहर ही नहीं पाते ।

#### (फिर प्रकाश)

प्रह्मा—वही पुनकति का मा मैन ! नारों थोर तूनापन ! मृद्धि को बनामें के पहने का वह उत्तान ! वह मगता ! गया, नव गया; पान केवन एक उना देने वाली मुंधनाहर केव रह गई है । (स्वर बदन पार) नहीं, महाविष्णु ने जो कहा है, ती मुक्ते विष के नमीप प्रवस्य जाना चाहिए । वे नयस्य मुक्ते कोई मार्ग दिनायेंगे ।

[एक मर्तकी का प्रयोज । जिथर से बहुता झाया है उपर से ही] बहुता—तुम गीग हो गुरुव्यी ? नर्तकी—श्ररे ! श्राप यह नहीं जानते ? कैसा श्राश्चर्य है ! श्राप शिव लोक में हैं और श्राज देवाधिदेव महादेव के मनोरंजन के लिए हम सब गन्धर्य श्रप्नाराएँ श्रपनी सङ्गीत विद्या का प्रदर्शन करने यहाँ श्राये हैं।

[फुछ अन्य नर्तक आते हैं। उसी घोर से]

ब्रह्मा—किन्तु में यहाँ कव श्रायया ?

[नेपय्य से सूर्य का स्वर । धन्य हो पितामह ! श्रापके लिये काल के व्ययधान का तो कोई अर्थ ही नहीं !]

सब लोग-श्ररे ! पितामह ब्रह्मा हैं !

[सादर प्रणाम करते हैं ! रंगमंच की दूसरी ओर से किंव अपने प्रसिद्ध रूप में आते हैं । सांपों की ब्रावश्यकता नहीं है, न गङ्गा और चन्द्र की ही ।]

**दिव**—स्वागत प्रजापति ! स्वागत !

यहाा—प्रणाम देवाधिदेव महादेव (बढ़कर) जीवन भार हो गया है देव ! इस छुटि के व्यामोह ने मुक्ते स्वयं ग्रस लिया है। महाविष्णु से मुक्ति का मार्ग पूछा था। किन्तु क्या बताया उन्होंने, कहा देवाधिदेव जङ्कर से जाकर पूछो। बताइये देव ! श्राप तो रमशान में निर्देन्द धूमते है श्रीर फिर जाकर कैलाश पर समाधिस्थ हो जाते है। मेरी रक्षा कृरिये।

शिव—(मुस्कराकर) शान्त हो प्रजापित ! इन गन्धर्वों के पास सङ्गीत विद्या है, जो जीवन के भारी क्षणों में ऐसी मादकता भरती है कि फिर हृदय सारे कल्मपों को भूल जाता है। नन्दी!

नन्दी--देवाधिदेव !

[मनुष्प रूप में उघर से प्रवेश करता है जिघर से शिव आये हैं।]
शिव—हम प्रजापित ब्रह्मा को कैलाश ने जा रहे हैं, जहाँ इनका
पूर्ण सम्मान करने के लिये उमा हैमनती बैठी होंगी। तब तक तुम
इन गन्धवों से समस्त नृत्यगीत की विद्या प्राप्त करो और आकर ब्रह्मा
को बता दों, किसी प्रकार श्रतिथिदेव का हृदय तो प्रसन्न हो!

एक नर्तक —देवाधिदेव ! यह श्रापका लोक तो विचित्र है। यहां यह सूर्य का जल्दी-जल्दी श्राना श्रीर चला जाना एक व्याघात है।

शिव-तुम देव-लोक में जाकर ग्रानन्द करो । लौटते समय ब्रह्मा वहीं श्रा जायेंगे !

मन्दी-जनो श्राज्ञा ।

[सब बढ़ते हैं। प्रकाश क्षीण होता है। नतंक-नतंकियां और नन्दी रंगमंच के अगले भाग में आते हैं। दूसरा पर्दा गिरता है। सूर्य का प्रकाश नये पर्दे पर काफी देर तक दीखता है, फिर वेर तक बुकता है। यही फ्रम चलता है।]

नन्दी—(सब से) स्वामी की श्राज्ञा हुई है। किन्तु क्या यह कठिन विद्या में सीख सक्ता।

गन्धवं—नटराज का सेवक कैसी बात पूछ रहा है। जिसके टमरु के प्रतिष्यतित होने से दिगन्त में ब्रह्मुण्ण प्रवाह श्रपने द्याप कूमने लगता है! श्रीर कौन-सा राग है जो तुमने नहीं सीख लिया ?

नन्दी—देखी ! देखी ! जब से देव, दानव, यक्ष श्रीर नाग देवलीक की छोड़कर जम्बूढीप पर चने गये हैं श्रीर श्रापस में भगड़ा कर रहे है, सब से देवलीक का श्रानन्द ही चला गया है।

गन्धर्य-छोड़ो भी । नुन्दर तरुण श्रीर तम्भियाँ श्रधीर होने याने हृदय को भाषावेदा से निये राड़े हैं। मनोरंजन होने दो।

नन्दी-जितना गीमता है उतना ही हुएँ प्राप्त होता है।

गन्यवं-नन्दी ! श्राम्री श्राज हम ऐसा नङ्गीत मुनाएँ, ऐसा नृत्य दिसामें कि सुष्टि के रोम-रोम में श्रानन्द पुकारने नगे।

[अप्सराएँ मृत्य करती हैं। गन्धर्य गाते हैं। फुछ देर बाद नन्दी भी गाता है।]

गीत

नाची है सफन खरिट बरने रसमारा आगे तूनन प्रकान, हुट तिमिर गाना गूँज धानन्द मदिन, गॅडीवन ने पुजार, भूमे नन्मय विभोन, मोग मुग्य गारा ! [नृत्य और गीत समाप्त होता है। जिस श्रीर श्रह्मा गया या उसी ओर ते प्रवेद करता है।]

बहा - प्रत्य हो नन्दी व्यव हो या हो या या घो भीर गन्धवों ! आज मेना हृदय मचपुन गद्यद हो नहा है। सृष्टि की बनाकर भी मुक्ते इसमे एक सूनायन नमा करता था। किन्तु तुमने धाने सामूहिक जीवन में जो तय-तान भरी महिमा उत्पन्न कर नी है, यह न जाने गयों मुक्ते एक धपूर्व धान्ति देती हैं ?

नन्दी-प्रजापति । प्राप स्थामी का मातिस्य स्थीयतर महर्के पा भी गये !

ब्रह्मा—(हॅमकर) देवलोक में हो नन्दीरवर ! विष्णु, शिव श्रीर श्रह्मा के लिये तो देवलोक में ये देर-देर में दिलाई देने वाले दिन-रात पत-गल की भाँति बीत जाते हैं। श्रीर मनुष्य लोक के तो गुगों के बीतने पर भी हमें पता नहीं चलता। मैं तो नुम्हारा गान नुन रहा था, महीं इस श्रीर एड़ा-एड़ा। गुम पत्य हो। यह विद्या गुमें दो नर्न्दीस्वर! स्टिट करने वाला ब्रह्मा आज तुमसे दान मांग रहा है।

नन्दी—लिजत न करें देव। श्राप प्रजा का हित करना चाहते हैं। श्रापको कुछ भी श्रदेह नहीं है। जिसमें लोक का मनोरंजन हो वह आपके चरणों पर समिपत है। शाज से यह विद्या श्रापकी हुई। श्राप इसका चाहे जैसा प्रयोग करें।

[मह्मा प्रसम होते हैं। सब प्रणाम करते हैं। नन्दी एक और जाता है और जिस ओर से नतंक-नतंकी आये थे, उसी मागे से चले जाते हैं।]

जहाा—संगीत ! सिष्टि के कण-कण की गति जो नाद उठाती है वहीं तो मंगीत है ! समस्त गता का राग जब गूँजता है तब वहीं तो आनन्द का माध्यम बनता है !

[जिस और से नर्तक-नर्तकी जाते हैं, उघर से इन्द्र का प्रवेश ।] बह्मा-कीन ? देवराज इन्द्र !

इन्द्र—(प्रशाम करके) देवराज नहीं ब्रह्मा ! मैं व्याकुल हो रहा हैं। मुफ्ने एकान्त चाहिए। मुफ्ने मेरे मन का मूनापन खाये जा रहा है। ब्रह्मा—वयों? इन्द्र—मैं नहीं जानता प्रजापति ! मैंने स्वर्ग में आनन्द किया, पृथ्वी पर जम्बूदीप पर श्रविकार किया । दानव, यक्ष श्रीर नागों से घोर पुद्ध करके, समुद्र मधकर, विजय प्राप्त की, किन्तु कहीं, कहीं भी धान्ति नहीं मिली । पृथ्वी पर लूट मची हुई है । किसी भी भाँति विषमता का अन्त ही नहीं हो पाता । वर्णों का विभाजन हो गया है । परस्पर एक दूसरे से पृणा है । वेद पर श्रविकार रसने वाले उच्चवर्ण मदान्य हैं श्रीर निम्नवर्णों को तो कोई श्रानंब्द ही नहीं रह गया है ।

. ग्रह्मा—धान्त हो देवराज ! मैंने जब सुष्टि का निर्माण किया तब मैंने एक बात पर प्यान नहीं दिया। बुद्धि का प्रयोग करने वाला प्राणी समूह में रहता है श्रीर उसे ऐसे साधन चाहिए जो किसी माध्यम से एक के मन की दूसरे के संशीप ने जा तके। तुम जाओं देवराज ! में इसका कोई उपाय दुँड निकालूंगा।

[इन्द्र निघर से बाया था उसी ओर उसका प्रस्थान । ब्रह्मा समाधि लगाकर बैठते हैं । नेपध्य में ऊंकार की गूंज उठती है । ब्रह्मा जगते हैं ।] ब्रह्मा—कीन बीन रहा है ?

नेपथ्य से — देव में ऋग्वेद हूँ। मेरे साथ नामपेद, यजुर्वेद शीर श्रथपंवेद हैं। श्रापने किसलिए हमें स्मरण किया है ?

ह्मा — वेद ! चारों वेद ! जान के भण्यार तुरहीं हो । तुमने मुना ! देवराज इन्द्र व्यथित थे । भैंने संगीत भौर तृत्व विद्या प्राप्त की है, किन्तु उसरी केवल मगोरंजन होता है । बह तो काफी नहीं है ।

सामवेद की नेपव्य से ध्वति — देव में सामवेद हूँ। मैं भी मंगीत हूँ। मैं स्वयं उन स्वरों को वषने भीतर धारण करता हूँ परन्तु सीर सो मैं भी नहीं जानता।

गरायेद की नेपस्य से ध्वनि--देव में फालेद हैं। में वीलने का संग हैं। सागे का मार्च में नहीं बता मनका।

यतुर्वेद की नेपस्य से ध्वति—प्रजापति में जीवन का धिनिय रूप है हिन्यू रूपने थामें भेरी गति नहीं।

अयर्वेवेद की नेवच्य में ध्वति—बह्मा ! मुभः में रस तो है, परन्तु यह आगे का वय प्रमस्त नहीं करता । महा सर्व चारों देदों से काम नहीं चल सकता। ग्रच्छी बात है। तुम चारों के चारों ग्रंशों को लेकर में इकट्ठा करता हूँ। तुम जा संकते हो।

नेपध्य से चारों का स्वर—जो ग्राज्ञा प्रजापति ।

ब्रह्मा—चारों के ग्रंश मेरे पास हैं। किन्तु इससे क्या हुआ ? मुफे श्रोर कुछ चाहिए। (सोचकर) अरे ! इतिहास ! तू कहाँ है ?

नेपच्य से-प्रभु ! मैं यहाँ हूँ।

बह्मा-इतिहास ! तू इन सत्र तत्त्वों को धारण कर सकेगा ?

इतिहास का नेपथ्य से स्वर—वयों नहीं प्रभु ! मैं धर्म, अर्थ और काम का केन्द्रीकरण हूँ। यदि मुफे योलने का अंश, गीत का अंश, अभिनय का अंश और रस का प्राण मिल जाये तो मैं केवल मनोरंजन ही नहीं, ऐसा रूप धारण कर सकूँगा कि संसार के सब काम मेरे माध्यम से दिसाये जा सकें। चुन्दर से चुन्दर उपदेश दिये जा सकें, आस्त्रों का ज्ञान मुफ में दिखाई देगा; मनुष्यों और समस्त प्राणियों की कला मुफ में जाग उठेगी और सव वणों के लोग मुफ से आनन्द प्राप्त करने लगेंगे।

यहा — तो ले ! मैं तुभी नाट्यवेद का नाम देता हूँ । आज से तू प्रपने नये रूप में पांचवें वेद के नाम से प्रस्थात हो । तू कहाँ रहेगा ? नाट्यवेद का नेयच्य से स्वर — प्रजापित की अय !

बह्या-- ग्ररे ! तेरा स्वर कैसे बदला ?

नाट्यवेद का नेपथ्य से स्वर—देव ! पहले में इतिहास था; तब तक मुक्त में यह जीवन नहीं था। अब में नये रूप में नाट्यवेद के रूप में हूँ। तभी मेरे स्वर में यह अपूर्व भादकता भर गमी है।

वह्या-में तुमे देखना बाहता हूँ।

नाट्यपेद का नेपथ्य से स्वर—प्रभु ! में अपने आप नहीं देख सकता। मेरे लिये नट श्रीर नटी बनाइये। में उनके माध्यम से प्रकट हो सकूँगा। मेरा प्राण किव के भाव से उत्पन्न होगा परन्तु मेरी श्रमिव्यक्ति नट श्रीर नटी में ही होगी।

ब्रह्मा-धन्य हो। श्रव मैं नट श्रीर नटी का निर्माण करूँगा।

[समाधि लगाते हैं। पहला पर्दा गिरता है। फुटलाइट बुफती है। एक ग्रोर से मनुष्यलोक वाले भाग में स्वयंभू मनु और अत्रि ग्राते हैं। इस पर्दे के पीछे एक जगह टिका हुआ प्रकाश दिखाई देता है। सूर्य बह है।]

स्वयंभू-गरे प्रभात का धीमा ग्रालोक दिखाई दे रहा है।

अत्रि—प्रजापित स्वयंभू मनु ! श्राप इतने व्याकुल वयों हैं ? स्वयंभू मनु—व्याकुल ! मैंने ही इस पृथ्वी पर वर्णों की मर्यादा को स्थिर किया है अति मुनि ! आप देख रहे हैं, मेरा कार्य कितना कित है। चारों ग्रोर हृदयहीन शासन है। मनुष्य मनुष्य के रूप में श्रासिर किस प्रकार देखा जाए। क्या मेरी यह तृष्णा कभी भी शान्ति नहीं पा सकेगी ?

अत्रि—में नहीं जानता।

सूर्य का नेपथ्य से स्वर—कार्य के भार से व्यस्त स्वयंभू मनु ! तुम नले ही न जानो, भले ही अबि मुनि भी नहीं जानें किन्तु में जानता है ?

स्वयंभू-तुम कीन हो ?

सूर्यं का नेपच्य से स्वर-में सूर्य हूँ। तीनों लोकों में घूमना ही मेरा काम है। में तुम्हारे श्रानन्द के लिए बताना चाहता हूँ। सुनी यह धावाज सुनत हो !

[नेपय्य में आनन्द का संगीतमय कोलाहल ]

स्वयंभू—(मुनकर) यह वया है देव ! सूर्य देव ! यह तो एक दिव्य रयर है। ब्राज तक कभी ऐसा मीठा स्वर नहीं मुना !

नैपय्य से सूर्व का स्वर - यह तो सुनने का ही परिखाम है। अभी सुनने देखा नहीं है। प्रजापति ब्रह्मा ने देवी सरववती के सामने नट की कल्पना की। उसी समय उनके सामने पाँच शिष्यों के साथ एक मुनि वहाँ मानर प्रकट हो गये।

अग्रि-मृति ! प्रयात् मनन करने वाले !

नेपस्य मे सूर्य का स्वर—हां, हां ! पृथ्वी के ही वासी ! पहाा ने उन मृतिराज से नाट्यवेद प्रहुण करने को कहा। उन्होंने तुरम्त ऐसा किया और नाटक दिखाकर प्रह्मा तथा देवों का मनोरंजन किया, जिससे ऐसे उपदेश जागे कि सब प्रसन्न हो उठे। यह तो ज्ञान का मण्डार है। ये मुनि ही भरत कहलायेंगे क्योंकि प्रह्मा ने उन्हें वर दिया है। उनके नाम पर ही ग्रव नाट्यवेद भारत कहलायेंगा।

अग्नि—किन्तु हम मनुष्यलोक में कैसे उसे पा सकेंग ? हमारी प्रजा को उसकी अत्यन्त आवस्यकता है।

सूर्य का स्वर नेपथ्य से—में मानता हूँ मनुष्य को ऐसे कलात्मक उपदेश की ग्रत्यन्त आवश्यकता है जिससे ज्ञान भी मिले, मन भी रस-मय हो ग्रीर सब को समान रूप से ज्ञानन्द मिले। मनोरंजन के साथ-साथ ही बहुजन का मन प्रसन्न हो श्रीर लोक-कल्याण हो। भाव-भूमि मनुष्य को मनुष्य के समीप ले आये।

[फुललाइट पूरी तरह जलती है]

स्वयंभू मनु-दिन हो गया।

श्रित्र—यह कैसा कोलाहल है ?

स्वयंभू मनु कलह, ईप्यां श्रीर वैमनस्य ने लोक को ग्रस लिया है। यया इस व्याजुलता से कभी मुक्ति नहीं होगी ?

[भरत का उस ओर से प्रवेश जिधर से स्वयंभू मनु और अित्र नहीं आये हैं।]

अत्रि—श्ररे ! महर्षि भरत ! हम ग्रापको प्रणाम करते हैं। [दोनों प्रगाम करते हैं]

भरत—व्याकुल न हो ब्रित्रि मुनि ! प्रजापित स्वयंभू मनु ! अपनी दीनता का परित्याग करो। मैंने सांगोपांग नाट्यवेद का सम्पादन किया है। देखो त्रिभुवन इसके कारण धानन्द से भूग रहा है।

[नेपथ्य से सुरीली संगीत ध्वनि सुनाई पड़ती है। दोनों चौंकते हैं।]

भरत—ब्रह्मा ने मुक्ते स्वयं नाट्यवेद दिया है। मनुष्य के समस्त ज्ञान का संचय नाट्यवेद मेरे पास है जिस पर किसी वर्गा विशेष का अधिकार नहीं। सब के लिए वह समान है। मनुष्यमात्र की भावभूमि को समान रूप से सुन्दरतर बनाने का ज्ञान मेरे पास है। सकल पृथ्वी पर ब्रानन्द स्थायी रहे, इसीलिए यह ऐसा ज्ञान है, जो एक बार में ही त्रमाप्त नहीं हो जाता, वार-वार मनुष्य की मेघा इसमें नवीन प्रार्व भर कर, नवे-नये रूपों में इसका मुजन कर सकेगी।

[सहसा पहला पर्वा हटता है, फिर दूसरा भी। पीछे का प्रकाश यन्द हो जाता है।]

स्वयंभू मनु—(चौंककर) देव ! यह क्या हुआ ? काल व्यवधान को मुला कर यह मनुष्यलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक से कैसे मिल गया !

[ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, गन्वर्व, अन्सरा, नन्दी आदि सब रंगमंच पर आते हैं। सब प्रसन्न हैं। मनु आदि प्रशाम करते हैं। वे आसीर्वाद देते हैं।]

भरत—(मुस्कराकर) यह नाटव्येद का ही चमरकार है स्वयंभू
भनु ! अब से मनुष्यक्षोक ने समस्त लोकों के दर्जन करने की द्यांन प्राप्त
कर ली है, जो सब के लियं समान है, और लोक-कल्याक की धमर
साधना है। यह बहुजन को धानन्द, मनोरंजन तथा उपदेश देने वाला
और ज्ञान धारण करने याला नाट्यवेद मनुष्य का महान उत्कर्ष है।
आगे बढ़ों! केंचे बनों! कोई रोक बानी नहीं रही है।

ं [स्वयंनू, भरत और श्रव्धि लागे बढ़ते हैं। देवलोक पार फरके वे अहालोक पहुँचते हैं।]

स्वयंभू मनु— मरे ! में कितना सुत पा रहा हैं। मेरी भावनाएँ कितनी उदात हो गयी है। मात्र देवलोक भीर प्रकालोक की समस्त दिव्य जेतना मनुष्यलोक को ही गिल गई है!!

[पन्पर्वे प्रसन्नता से गाते हैं। अप्तराएँ नृत्य करती हैं] गीत

> र्वप हीन, मुक्त प्राण, चेतन का रूप सार— सोने तर की समस्त श्राह्म भर नया प्यार त्रिभुवन में ज्योति जने

भारतत हो विजय सत्य प्राची को प्राच धान बीचें हो एक सार ।

[गीत का अन्त होते-होते पहला परवा [तिल जाता है ।]